द्वितीय अध्याय

दलितों पर थोपी गई निर्योग्यताएँ

◈ प्रास्ताविक

आज का युग विज्ञान का युग है । इसलिए कोई भी तथ्य को स्वीकार ने से पहले उसका तर्कपूर्ण परीक्षण होने लगा है, यह एक अच्छी बात है । जगत में सर्वत्र कार्यकारण नियम चलता है, संसार में यदि कुछ होता है तो उसके लिए कोई न कोई कारण तो होता ही है । कोई भी धटना या कार्य अकारण नहीं होता । और साहित्य तो समाज का ही प्रतिबिंब है, अत: साहित्य-रचना के लिए पर्याप्त सामाजिक कारणों का समाज में होना हक़ीकत है । दलित साहित्य को प्राय: आक्रोश एवं विद्रोह का साहित्य कहा जाता है अत: इस आक्रोश एवं विद्रोह के पर्याप्त कारणों का समाज में विद्यमान होना अवश्यंभावी बन जाता है, लेकिन आज का बुद्धिजीवी वर्ग भी पता नहीं क्यों इस वास्तविकता को अनदेखा करने के प्रयास में लगा हुआ है । 'हाथ कंगन' को वह 'आरसी' के द्वारा भी नहीं देख पाता है यह एक अत्यंत दुर्भाग्य पूर्ण बात है ।

दलित समाज के आक्रोश एवं विद्रोह का उदभव स्थान हमारा धर्मांध समाज ही है, यह एक सर्व विदित सत्य होते हुए भी इससे मुक्ति एवं सामाजिक परिवर्तन के संनिष्ठ प्रयासों का अभाव दिखाई देता है । समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा पिछड़ा और 'दलित' है यह जानते हुए भी क्यों बुध्धिजीवी वर्ग उसके उत्थान का संनिष्ठ प्रयास नहीं करता है ? क्या इससे उनको कोई खतरा है ? उनके सामाजिक दर्जे (स्टेट्स) को हानी पंहुचती है ? उनका मन किस अज्ञात भीति से सिहर उठता है ? क्या उनकी आत्मा भी उन्हें अपना कर्तव्य का बोध नहीं करवाती ? क्यों वे पिछड़ों को पिछड़ा रखने में ही अपनी भलाई समझते हैं ? क्या उनको अपनी साहित्य धर्मिता नहीं पुकारती ? क्यों वे इनसे रूबरू होने में हिचकिचाते है ? इन्हीं अनुत्तर या अलोप्त्तर प्रश्नों के प्रकाश में ही हमारी समाज व्यवस्था की कमज़ोर कड़ी दृष्टिगत होती है ।

हमारा समाज धर्म को जीता है, धार्मिक आचार-विचारों को अपने व्यवहार के मानदण्ड मानता है। धर्म के सिवा कोई भी बात सोचना भी उनके लिए महापाप है। सभी धार्मिक परंपराएँ एवं शास्त्रादेश उसके लिए पत्थर की लकीर है और इसी धर्मशास्त्रों में वर्णित समाज-व्यवस्था का वह अंधानुकरण करता है। मनमें यह प्रश्न उठता है की क्या महर्षि मनु भगवान कृष्ण से भी ज्यादा महान थे ? क्योंकि जब भगवान कृष्ण ने गीता में खुद यह स्पष्ट कर दिया है कि -

"चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"

अर्थात् संसार में गुण और कर्म के विभागानुसार ही मैंने चार वर्णों की रचना की है। तो फिर समाज मनु की जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था को ही क्यों इतना महत्व देता है ? भगवान् श्री कृष्ण ने सामाजिक व्यवस्था के भाग रूप ही इन वर्णों की रचना की उनमे ऊँच-नीच का कोई जाति भेद नहीं था , किन्तु आगे चल कर यह वर्ण-व्यवस्था जन्म आधारित ही बना दी गयी जिसमें मनुस्मृति का भरपूर योगदान रहा। वेदों और धर्म ग्रंथो का हवाला देकर इस व्यवस्था को जन्म आधारित बना दिया गया। कर्म एवं गुण आदि को नजर अंदाज़ करके शूद्र की उत्पत्ति के बारे में त्रुग्वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया कि -

"ब्राह्मणोंऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः
उरु तदस्य यद् वैश्यः पदोभ्याम् शूद्रो अजायतः ।।"[1]

अर्थात् ब्राह्मण की उत्पत्ति प्रजापिता ब्रहमा के मुख से, क्षत्रिय की बाहु से, वैश्य की जंधा से और शूद्रों की उत्पत्ति पैरों से हुई। इसलिए वेदों में वर्णित उसका उत्पत्तिस्थान ही उसका तिरस्कार एवं घृणा के लिए पर्याप्त कारण माना जा सकता है। वैसे पं. राहुल सांकृत्यायन सहित कई विद्वान पुरुष सूक्त के इस मंत्र को प्रक्षिप्त मानते हैं। "शूद्र शब्द का उल्लेख केवल त्रुग्वेद के पुरुष सूक्त में हुआ है। किंतु 'पुरुष सूक्त' त्रुग्वेद में बादमें जोड़ा गया प्रतीत होता है। कोलब्रुक और मैक्समूलर दोनों ही विद्धान यह मानते है कि 'पुरुष सूक्त' शैली और भाषा दोनों ही दृष्टियों से त्रुग्वेद की

अपेक्षा बहुत नवीन है ।"[2] डॉ.मंगलदेव शास्त्री का भी विचार है कि 'पुरुष सूक्त' स्पष्टतया अन्तिम वैदिक काल की रचना है ।...'ब्राहमण' और 'क्षत्रिय' शब्दों का प्रयोग भी 'ब्रहमन' और 'क्षत्र' शब्दों की अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है और स्पष्टतया वह अपेक्षाकृत पिछले काल का है ।" [3]

उसी प्रकार भवदेव पाण्डेय का भी कहना है कि- "दुर्भाग्य यह रहा कि ऋग्वेद के बाद पुरोहितों ने वर्ण-व्यवस्था के तहत अपनी जनता को द्विज-संस्कृति और शूद्र-संस्कृति के रूप में विभाजित कर दिया । विभाजन के लिए पुरोहितों ने जिस सबसे धारदार औजार का प्रयोग किया वह था भाषा । यानी वेदभाषा, आर्यभाषा अथवा देवभाषा । इसी भाषा ने सांस्कृतिक स्वीकृति और सांस्कृतिक अस्वीकृति के बड़े-बड़े षडयंत्र किये । इसका पहला षड्यंत्र था यह एक मंत्र, जिसे ऋग्वेद के दशवें मंडल के उत्तर-सूक्त में बड़ी कुशलता के साथ चस्पां कर दिया गया ।....देखा जाये तो इस 'मंत्र' कि भाषा मूल ऋग्वेद की भाषा से बिल्कुल मेल नहीं खाती है । ऋग्वेद में पहली बार इस विराट् पुरुष का दर्शन हुआ जिसने मुखस्थ-संस्कृति और पदस्थ-संस्कृति में द्वंद्वात्मक परिस्थितियाँ पैदा कर दीं ।" [4]

ऐसे ही धर्म ग्रंथो एवं वेदों को आधार बनाकर रची गई मनुस्मृति हिन्दू धर्म का संविधान बन गई । मनु की जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था का सबसे क्रूर पंजा शूद्रों पर ही पड़ा है । जन्म या कुल के आधार पर ही इन्सान को ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य या शूद्र का लेबल लगा दिया जाता है । क्या किसी भी ज्ञानी या विद्वान को ब्राह्मण का नाम दिये बिना सम्मानीत नहीं किया जा सकता ? क्या किसी सिपाही की वीरता का गुणगान करने के लिए उसका क्षत्रिय होना जरुरी है ? हिंदू समाज को इसमें कठिनाई क्यों आती है ? पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों को पूजनेवाला हिंदू शूद्रों के प्रति इतना असहिष्णु क्यों है ? एक मानव को मानवोचित अधिकारों से वंचित रखना किसी भी दृष्टि से धर्मसंगत या तर्कसंगत नहीं दिखाई देता । वर्ण-व्यवस्था का सबसे नीचा और हीन माना जाने वाला शूद्र वर्ग तो जैसे इन्सान माना जाए यह भी

उनकी मज़बूरी है। उनके साथ सदियों से पशुओं से भी बदतर व्यवहार होता आया है। मेरे अनुसार उनके आर्तक्रन्दन एवं आत्मपीडाओं से रूबरू होने के लिए भारतीय सामाजिक संरचना में उनके अब तक के सफ़र का विहंगावलोकन अस्थान नहीं होगा।

2.1 भारतीय सामाजिक संरचना में दलितों की दमनयात्रा

प्राचीन भारतीय समाज में शूद्रों को चांडाल,अंत्यज, वृषल आदि नामों से पुकारा जाता था। इस समय में धर्म ग्रंथों एवं वेदों के अत्यधिक प्रभाव के कारण शूद्रों का तिरस्कार और उनका उत्पीड़न भी उतना ही तेज और भयानक था। हिंदू शासकों के युग में मनुस्मृति को ही संविधान मानकर शूद्रों को उनका 'धार्मिक कार्य' सेवा सुश्रषा, मैला उठाना आदि में ही रत रखा गया। उनके ऊपर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएँ थोप दी गईं। (उसकी चर्चा हम इसी अध्याय में आगे करेंगे।) "हिन्दू शासन में मनुस्मृति का कानून चला। इस कानून के तहत मेहतर चाण्डाल कहलाते थे। इनके लिए गाँव से बहार रहने, पुराने फ़टे कपडे पहनने, सूअर पालने, बासी रोटी माँगकर खाने, कच्ची मढ़ी बनाकर रहने, गाँव में न घूमने, सचिह्न रहने, कुत्ते गधे और सूअर पालने का विधान था। इनके लिए दिन में एक बार आचमन करेगा, स्नान करेगा यह क़ानूनी आदेश था।

इस बेचारे वर्ग की जीविका का कोई साधन नहीं था, दूसरों के जूठे टुकडे माँगकर पेट भरता था। इसके लिए स्कूल, मंदिर, सराय, ढाबा में प्रवेश वर्जित था। यह सचिह्न रहता था और गाँव, शहर में जब जाता था तो झाड़ू लेकर या झाँखर बाँधकर सड़क से गुजरता था। इसे सड़क पर आवाज लगाते चलना पड़ता था और पहचान के लिए गले में काला डोरा बाँधना पड़ता था। सार्वजनिक मार्ग पर चलते समय थूकने के लिए इसे अपने गले में हांडा लटकाकर चलना पड़ता था। कुल मिलाकर चाण्डाल बेचारा कहने को तो मनुष्य प्राणी था किंतु उसकी दशा एक कुत्ता बिल्ली जैसे जानवर से भी बदतर थी। कुत्ता-बिल्ली तो हिंदू के चौके में घुस जाता

था किंतु कोई अछूत मेहतर किसी हिंदू के मकान की दीवार से 24 कदम दूर रहकर ही बात कर सकता था। हिंदू को उसकी छाया से भी नफ़रत थी।" [5] इस प्रकार हिंदू शासन में दलितों पर अमानवीय अत्याचार एवं पाशवी यातनाएँ गुजारी गईं।

विदेशी हमलावरों ने हिंदू शासन को नष्ट और भ्रष्ट कर दिया तो सामाजिक परिवेश में आंशिक परिवर्तन हुआ लेकिन शूद्रों के लिए यह परिवर्तन भी कुछ खास लाभदायी या मुक्तिदायी नहीं रहा । सिकंदर सेल्यूकस, मुहम्मद बिन कासिम, गजनवी आदि जनूनी हमलावरों ने हिंदू शासन की नींव को हिला कर और हराकर रख दिया। बाद में गोरी और गुलाम वंश का इस्लामी शासन छा गया। मुगलों के शासनकाल में भी अछूतों की दशा दयनीय बनी रही । इनका धर्म परिवर्तन कर इस्लाम में दीक्षित करने का अभियान चलाया गया। धर्म परिवर्तन कर इन्हें शेख (मेहतर) खाकरोब, हलालखोर आदि नामों से पुकारा जाने लगा। उन्होंने भी इन अछूतों से सेवा कार्य ही करवाया। मुस्लिम औरतें पर्दानसीन रहती थी इसलिए महलों में ही उनके लिए शौचालय बनाए गए औए इन अछूतों का उनका 'धर्म कार्य' मैला उठाने के लिए प्रयोग किया गया। अत: कुल मिलाकर यह काल भी अछूतों के लिए कोई नया परिवर्तन या नयी सुबह लेकर नहीं आया।

भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ और अंग्रेज अपने साथ पाश्चात्य विचारधारा एवं परंपराएँ लेकर आए इसलिए उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था को इतना महत्व नहीं दिया । उन्होंने केवल जाति के आधार पर किसी इन्सान को मानवोचित अधिकारों से वंचित रखकर पशु जैसा जीवन यापन करने के लिए बाध्य करना उचित नहीं समझा। इसी काल में ऐसी विकसित सोच के आधार पर अछूतों को पहली बार अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का परिचय हुआ। इसके चलते वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बना। इस दृष्टि से इस काल में दलित चेतना का प्रागट्य हुआ जो आज तक दलित को अधिकारों के लिए संघर्ष रत रखे हुए है । अंग्रेजों के शासनकाल में जाति को इतना महत्व नहीं दिया जाता था,

इसिलिए उच्चवर्णों का मुँह बंद हो गया था और इसी वजह से दलितों का दमन भी कम हो गया था, फिर भी समाज के आतंरिक स्तर पर अभी भी वर्ण-भेद मौजूद था। स्वातंत्र्य आंदोलन के दौरान भी इन अछूतों का सिर्फ प्रयोग ही किया गया। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को भारतीय समाज का कलंक तो माना लेकिन इस कलंक को मिटाने के लिए व्यवहारिक प्रयास नहीं किए। उन्होंने धर्म को सर्व श्रेष्ठ बताया और सफाई को तप बताकर शूद्रों को उसमें लगे रहने के लिए कहा। अपना पेशा ही अपना धर्म है। कोई पेशा बुरा नहीं होता इसलिए मैला उठाना भी बुरा नहीं है। अपने धार्मिक कार्य को निष्ठापूर्वक करके ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है, यही उनके कथनों का सार बना रहा। इसके संबंध में एस. एल. सागर का कहना है कि - "गाँधी और नहेरु ने इन मेहतरों को गुमराह करने के लिए अनेक लच्छेदार भाषण दिए किंतु इनके सुधार के लिए और इनसे गंदा काम छुड़ाने के लिए कभी कोई व्यावहारिक प्रयास नहीं किया। नहेरु प्रधानमंत्री बने। पाकिस्तान से विस्थापित सवर्ण हिंदू जब भारत में घुसे तो नहेरु ने अरबों रुपए इन अपने जाति भाइयों में बाँटा और उन्हें एक समय में ही अपने जीते जी मिल मालिक, कारखानेदार और उद्योगपति बनाकर बाजार का कारोबार उन्ही के हाथों में सौंप दिया किंतु चार हजार वर्ष से मैला उठाकर बासी रोटी से पेट भरनेवाले इन अभागे अस्पृश्यों को कोई सहायता नहीं दी।" [6]

अंग्रेजों के चले जाने के बाद भारत के शासन की बागड़ोर हिन्दू धर्म के पल्ले पड़ी और परिणामत: इन पिछड़ी जातियों को पिछड़ी रखने के षड्यंत्रों को खुला दौर मिल गया। धार्मिक लोगों, जिनमें सवर्ण ही आते हैं , क्योंकि अछूतों को तो धर्म पालन की अनुमति भी नहीं थी, ने फिर से इन जातियों पर दमन चक्र शुरू कर दिया। आज़ादी के बाद ही इन पिछड़ी जातियों की गुलामी का फिर से प्रारंभ हुआ। आजाद भारत की 'आज़ाद' सरकार ने इन जातियों के विकास एवं उनके उत्थान में लगे रहने का ढोंग करते हुए यही प्रयास किए कि वे समाज के निम्न स्तर पर ही बने रहे।

"स्वतंत्र भारत की सरकार ने नाटक तो बहुत किया, अनेक कागजी फ़रमान जारी किए, कमेटियाँ और आयोग गठित किए किंतु यह सब धोखा देने और उनके वोट प्राप्त करने की नीयत से किया गया । 1958-59 में भारत सरकार ने मलकानी कमेटी गठित की इसने देशभर का भ्रमण कर करीब 300 नगरपालिकाओं का सर्वेक्षण किया और एक विस्तृत रिपोर्ट भेजकर केन्द्र सरकार को सिफारिश की जिसमें कच्चा मैला उठाने और शौचादि के कामों में सुधार की सिफारिशें थीं किन्तु ये सिफारिशें खत्ते खाने में डाल दी गईं । सफाई कर्मियों के मन बहलाने को समिति तो गठित कर दी किन्तु कार्यवाही कुछ नहीं की । 1959 में बाबू जगजीवनराम के परिश्रम से मजदूर आयोग गठित किया गया । गजेन्द्र गड़कर समिति के अध्यक्ष व उप समिति के अध्यक्ष भानुप्रताप पांडे ने नगरपालिकाओं का निरीक्षण किया और 154 पृष्ठ की रिपोर्ट भी दी किन्तु मजदूर आयोग ने जो 654 पृष्ठ की रिपोर्ट दी थी उसके साथ यह रिपोर्ट भी सरकार का काम कहकर रद्दी की टोकरी में डाल दी गई । वर्ष 1960 में मकनजी कमिटी गठित की । इस कमेटी ने जिजमानी प्रथा को सरकार के अधीन करने की सिफ़ारिश की किन्तु इस समिति की एक भी सिफ़ारिश कार्यान्वित नहीं की गई । प्लानींग के धन से एक झोंपड़ी भी इन भंगियों की नहीं बनाई गई । सर्वोच्च न्यायालय ने सफ़ाई मजदूरों को औद्योगिक मजदूर माना और क़ानून भी बनाया पर किसी भी नगरपालिका ने इन्हें औद्योगिक मज़दूर नहीं माना । हर प्रदेश की सरकार ने मेहतरों की कार्यप्रणाली में सुधार लाने के लिए समितियाँ गठित की हैं किन्तु ये समितियाँ सिवाय दिखावे के कुछ नहीं करतीं और कुछ सुझाव भी दें तो सरकारें नहीं मानती और धन ही नहीं देती हैं ।" [7]

इस प्रकार भारतीय सामाजिक संरचना में अछूत-शूद्रों का यह वर्ग समाज के सबसे निम्नत्तम स्तर पर रहा है और आज भी उसे वहीं रखने के प्रयास हो रहे हैं यह एक दुर्भाग्यपूर्ण वास्तविकता है ।

2.2 दलितों पर थोपी गई निर्योग्यताएँ

निर्योग्यता या अयोग्यता का अर्थ होता है किसी कार्य के लिए अक्षम होना । उस कार्य को करने की क्षमता का अभाव होना । लेकिन इसके बिलकुल विपरीत सक्षम व्यक्तियों को भी किसी कार्य या सुविधा के उपभोग हेतु उसकी जाति के आधार पर निर्योग्य घोषित कर देना कहाँ तक वाज़िब है ? दलित जातियों के साथ उच्चवर्णों ने यही व्यवहार किया है । हमारी समाज व्यवस्था में दलित जातियों को उनके मानवोचित अधिकारों एवं सुविधाओं के उपभोग हेतु अयोग्य घोषित करके उनके साथ बर्बर एवं क्रूर व्यवहार किया गया है । मानव को मानवीय अधिकारों के लिए अयोग्य घोषित करके उनके विकास एवं उत्थान की सारी संभावनाओं पर पूर्ण विराम लगाने का 'महान' कार्य हमारे धर्मान्ध मनीषियों के द्वारा किया गया और हमारा 'धर्मप्रेमी' समाज आज तक उनके द्वारा दिये गए धर्मादेशों का अंधानुसरण करता आया है । पूरे संसार में केवल हमारा ही धर्म मानव-मानव में भेद-भाव करके एक को मानव रूप में भगवान का स्थान दिलवाता है और दूसरे को पशुओं से भी बदतर ज़िंदगी जीने के लिए बाध्य करता है । हमारे धर्म शास्त्र इस पद-दलित वर्गों को मानवीय अधिकारों के लिए अयोग्य घोषित करते हैं । किसी भी योग्य या सर्वथा उचित व्यक्ति को भी उसकी जाति के आधार पर उसे सर्वथा अयोग्य घोषित कर दिया जाता है । पता नहीं यह जाति क्यों नहीं जाती ? जाति ही मनुष्य की क्षमता एवं योग्यता निर्धारीत करती है ।

भारतीय समाज में धर्म के नाम पर दलित जातियों पर सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, राजनैतिक आदि कई प्रकार की नियोग्यताएँ थोप दी गईं जिनके कारण दलित जातियों का जीवन पशुवत हो गया था। यहाँ हम उन थोपी गई निर्योग्यताओं एवं उनसे उत्पन्न समस्याओं की सटीक चर्चा करेंगे ।

2.2.1 अस्पृश्यता

दलितों को हजारों वर्षों से अस्पृश्य समझा जा रहा है। आज भी शहर में हो या गाँव में, कम-ज्यादा प्रमाण में अस्पृश्यता विद्यमान है। वर्ण-व्यवस्था का जन्म समाज के समुचित एवं सुयोग्य संचालन हेतु कर्म के आधार पर हुआ है, जिसकी भगवान कृष्ण ने गीता में पुष्टि भी कर दी है फिर भी समाज जन्म आधारित जाति-भेद से बाहर नहीं निकल पाया है।

'अछूत'या 'अस्पृश्य' तो जैसे दलितों का पर्यायवाची बन गया है। प्राचीन समय में अस्पृश्यता के प्रभाव के कारण इनको पृथक समाज के रूप में रहना पड़ता था। उनकी बस्तियाँ गाँव या नगर के बाहर होती थीं, जिन्हें चमादड़ी,चमरौही, चमारवास, डूम्पाल जैसे नामों से पुकारा जाता था। दलित जातियों की यह अवदशा वैदिक काल से ही चली आयी है। शास्त्रों, पुराणों और स्मृतियों ने इसे और बर्बर बनाया है। जिनके कुछ उदाहरण देना उचित समझूँगा -

प्राचीन भारत में मनु स्मृति के समय में दलितों- शूद्रों के लिए अन्त्यावसायी, चाण्डाल, अन्त्यज, श्वपाक, वृषल आदि नाम का प्रयोग मिलता है। अन्त्यावसायी का अर्थ ही अन्त में रहने वाले होता है। "निषाद, आयोगव,भेद, आन्ध्र, चन्चू, क्षत, पुक्कुस, वेण, इत्यादि जातियों की वृध्धि का वर्णन करने के पश्चात मनु इनके विषय में कहता है कि इन्हें नगर के बाहर चैत्य,वृक्ष अथवा श्मशान के समीप अथवा पर्वतों और उपवनों में रहना चाहिए।....ये निश्चय ही बस्ती से बाहर रहते थे। उन्हें अपात्र कहा गया है अर्थात् उन्हें बर्तनों में भोजन नहीं दिया जाता था, क्योंकि उनके इस्तेमाल किए हुए पात्र द्विजातियों के काम नहीं आ सकते थे।"[8] मनु ने उच्चवर्णों के शूद्रों के साथ हर प्रकार के संपर्क पे रोक लगायी है। भाद्रसाल जातक का एक प्रसंग है कि-" अभिजात क्षत्रिय अपनी दासी से उत्पन्न हुई पुत्री के साथ भोजन नहीं करता है और जब दासी पुत्री वाशवखतिया का पुत्र अपने नाना के यहाँ आता है तो जिस स्थान पर भोजन करता है उसे दूध और पानी से धोकर शुध्ध किया जाता है। श्वेत

केतु जातक में एक ब्राह्मण चाण्डाल को देखकर इस डर से भागने लगता है कि कँही चाण्डाल के स्पर्श से दूषित वायु उसे छू न ले । मातंग जातक में कहा गया है कि 6000 ब्राह्मण अनजाने में चाण्डाल का जूठा खाने के कारण जाती से बहिष्कृत हो गए ।" [9] जातकों से यह भी पता चलता है कि - "उनके स्पर्श से बचने के लिए यह नियम बनाया गया कि वे रात में नगर या ग्राम में आ जा नहीं सकते थे । दिन में नगर और गाँवों की बस्तियों में जा सकते थे । किन्तु राजा के आदेशानुसार उन्हें विशेष चिह्न रखने पड़ते थे जिससे उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता था ।" [10]

धर्म सूत्रों में अस्पृश्यता एक प्रबल यथार्थ के रूप में परिलक्षित होती है और वह नियमों के स्वरूप में मिलती है । "उसके स्पर्श को अपवित्र करनेवाला माना गया है और उसका प्रायश्चित वस्त्र धारण किए हुए ही स्नान करना बताया गया है । कंही-कंही चाण्डाल के निकट आने, उसकी आवाज सुनने, उसे देखने या उसके बोलने से भी उसके अशौच लगने के उल्लेख मिलते हैं । उदाहरण के लिए ऐसे स्थान पर वेद का अध्ययन रोक देना चाहिए, जहाँ चाण्डाल ठहरा हो, या जहाँ से दिख रहा हो, या जहाँ से वह वेद का पढ़ा जाना सुन सकता हो ।" [11] अर्थ शास्त्र में विधान है कि यदि कोई चाण्डाल किसी आर्य स्त्री का स्पर्श कर ले तो वह 100 पण दंड का भागी होगा (चाण्डालास्थायीं स्पृशतः ..... शत्योदंडः।)"[12]

मनुस्मृति में चाण्डाल को किसी ब्राहमण को श्राध्ध भोज खाते हुए देखने से भी मना किया गया है।[13] अन्त्यज या चाण्डालों को देखना उसके विधानों के अनुसार अपशकुन है और उसके निकट रहते वेदों का अध्ययन भी नहीं करना चाहिए। उसके शारीरिक संपर्क से सड़क भी, कीचड़-पानी भी अशुध्ध हो जाता है । इसी तरह पक्की ईंटों से बने मकान भी उसके स्पर्श से अशुध्ध हो जाते हैं यद्यपि यह प्राकृतिक वायु द्वारा शुध्ध कर दिये जाते हैं । [14]

परवर्ती काल में भी शूद्रों की यही स्थिति बनी रही रामायण और महाभारत के समय में भी इनकी स्थिति में कोई खास सुधार नहीं दिखाई देता । "राम ने वन गमन के समय निषाद राज गुह का केवल आलिंगन ही किया उसका भोजन नहीं लिया । आलिंगन करने का भी एक विशेष कारण था, क्योंकि गुह ने जो उनके प्रति उपकार किया था, उसके प्रति कृतज्ञता के ज्ञापनार्थ इतना करना आवश्यक था । गुह का भोजन राम ने नहीं किया । यह गुह की अस्पृश्यता का द्योतक है ।" [15] मनु के 'वारिश' बने दयानंद सरस्वती ने भी इन शूद्रों की स्थिति को और बर्बर बनाने ने में 'यथासंभव' योगदान दिया । सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने अपने दिल में व्याप्त सारी घृणा एवं तिरस्कार को धर्मादेश का सुंदर मुखौटा पहनाकर पेश कर दिया । अस्पृश्यता का अत्यंत बुरा अनुभव महा प्रतापी हिन्दू सम्राट शिवाजी महाराज को भी हुआ । "शिवाजी पहले हिन्दू सम्राट हुए और सभी हिन्दू उनका सम्मान करते हैं । पर जब उनके राज्याभिषेक का प्रश्न उठा तो ब्राह्मणों ने कहा कि वे शूद्र हैं और उनका राज्याभिषेक वैदिक रीति से नहीं हो सकता । शिवाजी चाहते तो मुसलमानों की भाँति ब्राह्मणों को चरणों में डाल देते पर धर्म का आतंक बड़ा था । अतः अस्सी हजार स्वर्ण मुहरों की रिश्वत देकर काशी के ब्राह्मण को बुलाया परंतु उसने अपने पैर के अंगूठे से शिवाजी का तिलक किया ।" [16]

अंग्रजों के आगमन के बाद भी निम्न जातियों की यही स्थिति बरकरार रही । अंग्रेजी शासन के प्रारंभिक काल में दक्षिण में यह प्रथा (अछूत) अपने उग्रतम स्वरूप में व्याप्त थी । हरिदत्त वेदालंकार ने इस संदर्भ में लिखा है - कि "कोचीन सरकार की रिपोर्ट के अनुसार ब्राह्मण नायर के स्पर्श से दूषित समझे जाते थे । किन्तु कम्मलन (राज, बढ़ई, लुहार, चमार) ब्राह्मणों को चौबीस फिट कि दूरी से अपवित्र कर देता था, ताड़ी निकलने वाला छत्तीस (36) फिट से, येरुमत कृषक 48 फिट से और यहेमन (गोमाँस भक्षक परीहा) 64 फिट से । यह संतोष की बात थी कि इससे पुरानी रिपोर्टों में परीहा 72 फिट कि दूरी से अपवित्र करनेवाला माना गया है । ये अभागे

अछूत शहरों से बाहर रहते थे, मंदिरों में उसका प्रवेश वर्जित था,क्योंकि सब भक्तों का उद्धार करनेवाले देवता भी इनके दर्शन से दूषित हो जाते थे । ये कुँओं से पानी नहीं भर सकते थे । संस्था और पाठशाला का लाभ नहीं उठा सकते थे । ये उच्च वर्ग की बेगार आदि के अत्याचार सहते हुए बड़े दुःख से अपने नारकीय जीवन की घड़ियाँ गिनते थे ।" [17] "इसी अस्पृश्यता की भावना के कारण पेशवाओं के राज्य पूना में महर एवं भंग नामक अछूत जातियों को सायंकाल तिन बजे से प्रातः नौ बजे तक नगर प्रवेश की अनुमति नहीं थी क्योंकि उस समय मनुष्य की परछाइयाँ अपेक्षाकृत लंबी होने से उनसे किसी द्विज के अपवित्र हो जाने का संकट रहता है । पंजाब में हरिजन शहर में चलते समय लकड़ी के गट्ठे बजाते थे ताकि लोगों को ज्ञान हो जाय की कोई अछूत आ रहा है, जिससे वे अलग हट जाएँ । यहाँ तक कि उन्हें सड़क पर थूकने की मनाही थी अतः थूकने के लिए गले के आस-पास एक बर्तन लटकाये रहते थे ।" [18]

अस्पृश्यता के मूल में भी वर्ण-व्यवस्था ही है, क्योंकि वर्ण-विभाजन के समय इनको काम ही ऐसा सौंपा गया, जिसे समाज नीची दृष्टी से देखता है । आज के समय में भी कहीं न कहीं इस मानसिकता के दर्शन होते रहते हैं । सफाई का काम जैसे इनकी जाति के साथ जुड़ गया है । आज भी स्कूल में गृहकार्य न लानेवाले या शैतानी करनेवाले बच्चे को क्लास की सफाई का काम 'सजा' के तौर पर सौंपा जाता है । मैं जब छोटा था तो एक बार हमारे पड़ोसी गाँव दूधवाडा, ता. पादरा, जि. बड़ौदा में बुनकरों ने सवर्णों के खिलाफ अस्पृश्यता संबंधी रिपोर्ट लिखवाई थी, इसलिए एक रात को उनके मुहल्ले पर गाँववालों ने पथराव कर दिया था और खबर मिलने पर मेरे पिताजी एवं हमारे गाँव के अन्य लोग जो बुनकर थे, उन्होंने पुलिस को खबर की और पुलिस को लेकर गये तब गाँववाले पूरे महोल्ले को आग लगाने का प्रयास कर रहे थे । हमारे गाँव में भी हमारा मंदिर, दुकानों आदि सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश वर्जित था । जब मैं कोई चीज लेने दुकान पर जाता तो दुकान की चौखट पर मुझे पैसे रख देने होते थे और दुकानदार अन्य ग्राहकों से जब खाली होता तो बड़े

तिरस्कार से उस चीज को मेरे सामने फेंक देता था । मेरी माँ एक शिक्षिका थी और पिताजी कृषि विभाग में ग्राम सेवक के पद पर कार्यरत थे । अतः किसी योजना की जानकारी या किसी सरकारी लाभ प्राप्त करने के लिए पिताजी से मिलने कई सवर्ण लोग भी हमारे घर आते रहते थे और हमसे आत्मीयता पूर्ण व्यवहार करने का नाटक किया करते थे लेकिन यही लोग मेरे ताऊजी या चचेरे भाई-बहनों के साथ वैसा ही तिरस्कार पूर्ण व्यवहार करते थे और तब उनके ढोंग का पर्दाफ़ार्श हो जाता था । कभी मुझे अगर मेरे इन 'नीची जाति' के भाई-बहनों के साथ किसी कामवश सवर्णों के घर जाना होता तो मेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाता था ।

आज मैं खुद एक शिक्षक हूँ अतः जब भी अपने गाँव जाता हूँ तब ये लोग मुझे सम्मान देने का ढोंग करते हैं लेकिन अन्य दलित जो पढ़े-लिखे नहीं है, उनके यहाँ काम करने जाया करते हैं उनके साथ वैसा ही घृणित व्यवहार किया जाता है ।

अतः मैं विश्वास के साथ यह कह सकता हूँ कि आजादी के इतने सालों के बाद भी और अनेक क़ानून और विधेयकों के पारित होने के बावजूद भी स्थिति में बहुत ज्यादा अंतर नहीं आया है । शहरों में अस्पृश्यता कम दिखती है परंतु दूर दराज के गाँवों में अस्पृश्यता अपने मध्यकालीन स्वरूप में ही बरकरार है ।

2.2.2 धार्मिक निर्योग्यताएँ

धर्म इन्सान को एक दूसरे से जोड़ता है । धर्म का मूल उद्देश्य लोक कल्याण होता है और वह मानव समस्याओं के निवारण का एक प्रमुख साधन होता है । संसार की समस्याओं से त्रस्त एवं विक्षप्त मनुष्य धर्म की शरण में आकर शांति प्राप्त करता है । धर्म ही है जो आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास के सहारे मानवीय संतापों को नष्ट करके इन्सान को सभी प्रकार की त्रासदियों से मुक्ति दिलाता है । महाभारत के रचयिता महर्षि वाल्मिकी का कहना है कि -

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनंद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापायपरपीड़नम् ।।" [19]

अर्थात् दूसरों का हित करना ही धर्म है । दूसरे को पीड़ा देना अधर्म है । तुलसीदासजी ने भी कुछ ऐसा ही कहा है -

"परहित सरिस धरम नहीं भाई। परपीड़ा सम नहीं अधमाई ।।" [20]

मुस्लिम तत्वचिंतक शेख सादी का मानना है कि - "धर्म केवल लोगों की सेवा में है। तसबीर या मुसल्ला में नहीं है।" [21]

धर्म के बारे में चीनी तत्वचिंतक कन्फूशियस का कहना है कि - "गंभीरता, उदारता, विश्वस्तता, तत्परता तथा दयालुता का व्यवहार ही सच्चा धर्म है।" [22]

महात्मा गाँधी ने भी शुध्धाचरण एवं सदाचार को ही धर्म के मूल तत्व गिनाये हैं । स्वामी विवेकानंद का कथन है कि - "The only God to worship is the human soul in the human-body, of course, all animals or temples too, but man is the highest. The Taj-mahal of temples, If I can not worship in that, no other temple will be of any advantage." [23]

अभिप्राय यह है की मनुष्य के शरीर में विराजमान जो अंतरात्मा है, वही ईश्वर है। यद्यपि सभी प्राणी ईश्वर के मंदिर हैं, तथापि मनुष्य इन सबमें सर्वोत्तम-मंदिरों का ताजमहल है। यदि मैं उसकी पूजा न कर सका तो दूसरा कोई भी मंदिर मेरे लिए उपयोगी नहीं है।

इन सूत्रों के आधार पर हम इतना तो कह ही सकते हैं कि धर्म का दृष्टिकोण मानवतावादी है और उसके केन्द्र में मनुष्य ही है। लोककल्याण एवं मानवता इसके मूल मंत्र हैं। लेकिन जब यही धर्म कुछ लोगों की सत्ता लालसा एवं प्रभुता प्राप्ति की साधना का साधन केवल बनकर रह जाता है, तो धर्म का स्वरूप अत्यंत बीहड़ एवं विकृत बन जाता है, मेरे निर्देशक डॉ. एन. एस. परमार साहब का कहना है कि- "प्रायः देखा गया है कि धर्म संकीर्ण सांप्रदायिक और कभी-कभी तो अधार्मिक अभिगम को धारण करनेवाला दृष्टिगोचर होता है । ऐसी स्थिति में वह मानवीय संकट एवं समस्याओं में अभिवृध्धि ही करता है । धर्म जब बाह्याचारों एवं बाह्य

अनुष्ठानों में कैद होकर रह जाता है तो वह सड़ने लगता है और उसकी यह सडाँध मानव समाज में भी सडाँध पैदा करने लगती है ।" [24]

यह एक कटु वास्तविकता है कि धर्म विकृत एवं संकुचित मानसिकता के साथ मिलकर समाज के निम्न वर्गों के दर्प-दलन का प्रमुख साधन बन गया है । धर्मशास्त्रों का मनगढ़ंत अर्थघटन करके मानव को मानव से दूर करने और समाज के एक बड़े हिस्से को कुचलने और सताने का प्रमुख साधन बन गया है और शायद इसीलिए धर्म के नाम पर जो उत्पात हुए है और जितना खून बहा है , उतना शायद किसी के नाम पर नहीं बहा होगा। इसीलिए धर्म समाजशास्त्री तथा समाज सुधारकों का आलोचना का केंद्र बन गया। "धर्म का सर्वाधिक विकृत एवं बीहड़ स्वरूप तब सामने आता है, जब वह पूंजीवादी प्रभुवर्ग के साथ साँठ-गाँठ करके चलता है। धन, सत्ता और अभिजात वर्ग के साथ धर्मका गठबंधन उसको लक्ष्य से च्युत कर देता है। धर्म के इस विकृत, संकीर्ण, अनुदार, धर्मान्ध, अमानवतावादी अभिगम के कारण ही सुधारवादियों द्वारा उसकी अत्यधिक आलोचना हुई है ।" [25]

धर्म का संदेश मानवता का प्रसार एवं लोक-कल्याण ही है, लेकिन विड़म्बना यह है कि इसी धर्म को मानव-कल्याण से विपरीत दिशा में मोड़कर समता और न्याय के स्थान पर विषमता एवं वैमनष्य के बीज बो दिए गए हैं । धर्म के ठेकेदारों ने धर्मशास्त्रों का विपरीत और मनगढ़ंत अर्थघटन करके धर्म को शोषण एवं अत्याचार का साधन बना दिया है । और इसी 'धार्मिक आदेशों' का प्रयोग करके समाज के निचले वर्गों पर अमानुषी अत्याचार किए गये हैं । धर्मशास्त्रों के नाम पर उन पर अनेक प्रकार की अयोग्यताएँ थोप दी गईं और इन निर्योग्यताओं के कारण यह उपेक्षित वर्ग बदतर जीवन जीने के लिए बाध्य बन गया । धर्म के नाम पर कपोल-कल्पित बातों का प्रचार करके इन निम्न जातियों में ऐसी मानसिकता को दृढ़ बना दिया गया कि हम अत्यंत तुच्छ एवं नीची जाति के हैं, अतः धर्म का नाम लेना भी हमारे लिए पाप है । और इस धार्मिक प्रचार के कारण उन पर अमानुषी

अत्याचार होता आया और उन्हें सदा-सदा के लिए निम्नता की गर्ता में डाल दिया गया।

2.2.2.1 धार्मिक अस्पृश्यता

यद्यपि इसी अध्याय में हम अस्पृश्यता के बारे में विस्तृत चर्चा कर चूकें है, तथापि यहाँ इस अस्पृश्यता को और क्रूर एवं घातक बनानेवाले धार्मिक ढोंग एवं ढकोसलों का उदाहरण देना उचित समझते हैं क्यूंकि, धर्मशास्त्रों ने ही इस अस्पृश्यता रूपी पेड़ को पानी देने का घिनौना कार्य किया है। मानवीय सदभाव एवं आपसी एकता तथा मानवीय मूल्यों का मृत्युघंट बजाने में मनुस्मृति, सत्यार्थ प्रकाश आदि धार्मिक 'विकृतियों' का बहुत बडा योगदान रहा है। इन्हीं के प्रभाव के कारण शूद्रों को मूलतः अपवित्र माना गया तथा मंदिर प्रवेश, पवित्र नदियों के घाटों के प्रयोग, पवित्र-स्थानों पर प्रवेश तथा अपने ही घर में देवी-देवताओं की पूजा करने से वंचित किया गया। उन्हें वेदों तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने का या सुनने का अधिकार नहीं था। डॉ. नर्मदेश्वर ने मनुस्मृति का उल्लेख करते हुए बताया है कि - " अस्पृश्यों को किसी भी प्रकार की धार्मिक राय नहीं दी जाती थी। उन्हें देव-भोग का प्रसाद भी नहीं दिया जाता था, जो व्यक्ति अस्पृश्यों को धार्मिक आख्यान इत्यादि सुनायेगा वह स्वयं अन्तावृत्त नामक नरक में जाएगा। ब्राह्मण उनके यहाँ पूजा, श्राध्ध, यज्ञ आदि करने नहीं जा सकते।" [26] इनको हिन्दुशास्त्रों में वर्णित सोलह संस्कारों से भी वंचित रखा गया। समाज के बाकी वर्गों की सेवा करना शूद्रों का धर्म बना दिया गया है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद सरस्वती भी लिखतें है कि- "शूद्र सब सेवाओं में चतुर अति प्रेम से द्विजों की सेवा करें और उन्हीं से अपनी उपजीविका करें।" [27] इसकी चरम सीमा तो तब आती है जब वे शूद्रों के इस 'धर्म कार्य' के समर्थन में कहते हैं कि- "शूद्रों को सेवा करने का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञान संबंधी कार्य कुछ भी नहीं कर सकता, किंतु शरीर के सब काम कर सकता है।" [28]

अगर विद्यारहित मूर्ख होना ही सेवाकार्य की वजह है तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में जो 'विद्यारहित मूर्ख' है उन पर यह नियम क्यों नहीं लागू होता ? लेकिन यह नहीं हो पाया है और यही शूद्रों की उपेक्षा और अवमानना का परिचायक है । राम चरित मानस के रचयिता तुलसीदास की विचारधारा में भी गज़बनाक विसमानता नज़र आती है । जहाँ वे धर्म कि परिभाषा में लिखतें है कि -

"परहित सरिस धरम नहीं भाई । परपीड़ा सम नहीं अधमाई ।।"

वहीँ पर मानस में उन्होंने लिखा है कि -

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी ।"

जैवर्णाधमतेली कुम्हारा , स्वपच किरात कोल कलवारा ।

पूजी विप्र शील गुणहिना , शूद्र न गुणगन ज्ञान प्रवीना ।"

अगर 'परहित' ही धर्म है तो शूद्र, ढोल, गँवार, पशु-नारी आदि की ताड़ना अधिकार पूर्वक क्यों ? हमारे म. स. विश्वविद्यालय के कला संकाय द्वारा आयोजित राष्ट्रिय हिन्दी संगोष्ठी में सिमला से आये हुए विशेष अतिथि प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपने वक्तव्य में " ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी" के लिए गोस्वामी तुलसीदास को बिलकुल निर्दोष बताते हुए कहा कि "इसमें तुलसीदासजी का कोई दोष नहीं है, यह तो उस समय के समाज का ही चित्र है उन्होंने तो सिर्फ सामाजिक यथार्थ को चित्रित किया है ।" [29] इस प्रकार उन्होंने बड़ी साफगोई से सारा दोष समाज के मत्थे मढ़ देने का प्रयास किया । लेकिन अगर यह मान लें तो भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के समय में भी शूद्रों की समाज में क्या स्थिति थी उसका संपूर्ण निचोड़ इस पंक्ति में मिल जाता है । मनु ने शूद्रों को शुभ या मंगलसूचक नाम धारण करने का भी अधिकारी नहीं माना है । मनु का मानना है कि -

"मंगलस्य ब्राह्मणस्म स्थात् क्षत्रियस्य बलान्वितम्

वैश्यस्यं घनं संयुक्तं शूद्रस्य तू जुगुप्सितम् ।"

अर्थात ब्राह्मणों को मंगलसूचक, क्षत्रियों को बलसूचक, वैश्यों को घन सूचक तथा शूद्र को निंदित या जुगुप्सा सूचक नामकरण करना चाहिए ।" [30]

शूद्रों का वेदों- उपनिषदों का अध्ययन करना या करवाना वर्जित बताया गया है । अगर कोई शूद्र वेदों का पठन सुन लेता है तो उसके कानों में लोहा पिघलाकर डाल देने तक की क्रूर एवं पैशाचिक प्रवृत्ति को धार्मिक आधार प्राप्त है । शूद्र अपने घरों में भी पूजा यज्ञ आदि नहीं कर सकते । ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि - "ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गायत्री के साथ उत्पन्न किया है, राजन्य को त्रिपुट के साथ और वैश्य को जगती के साथ किन्तु शूद्र को किसी भी छन्द के साथ उत्पन्न नहीं किया है , अतः शूद्र के पास भले ही काफ़ी धन हो पर वह यज्ञ का अधिकारी नहीं है ।" [31] इस प्रकार इन तथाकथित धर्मशास्त्रों ने शूद्रों का जीवन नर्क से भी बदतर बना दिया और इसी जीवन को अपनी नियति मानने के लिए बाध्य कर दिया ।

2.2.2.2 मंदिर प्रवेश पर प्रतिबंध

वास्तव में यह समस्या भी अस्पृश्यता का ही एक भाग है । अछूतों पर जो अनेक प्रकार की धार्मिक निर्योग्यताएँ थोपी गई, उनमें एक यह भी है कि वे मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन करने के अधिकारी नहीं है, क्योंकि इससे मंदिर और भगवान दोनों अपवित्र हो जाते हैं । कवि श्री सियाराम शरण गुप्त ने अपनी काव्य कृति "एक फूल की चाह" में इस सामाजिक परिवेश का यथार्थ निरूपण किया है । काव्य की कथा के अनुसार एक अछूत पिता जब अपनी मरणासन्न बेटी के लिए माँ के चरणों में चढ़ाया हुआ एक फूल प्राप्त करने के लिए हिंमत करके देवी माँ के मंदिर में घुस जाता है तो लोग उसे पहचान लेते हैं और कहने लगते हैं कि -

"कैसे यह अछूत भीतर आया / पकड़ो, पकड़ो देखो भाग न जावे,
बना धूर्त यह है कैसा / साफ़-स्वच्छ परिधान किए है,
भले मानुषों के जैसा ! / पापी ने मंदिर में घुसकर
किया अनर्थ बड़ा भारी / कलुषित कर दी है मंदिर की
चिरकालिक शुचिता सारी ।" [32]

समाज की ऐसी निराधार एवं अमानवीय मान्यता को करारा जवाब देते हुए कवि श्री सियाराम शरण गुप्त ने उस अछूत पिता के मुंह से कहलवाया है कि -

"हें, क्या मेरा कलुष बड़ा है / देवी की गरिमा से भी ;
किसी बात में हूँ मैं आगे / माता की महिमा के भी ?
माँ के भक्त हुए तुम कैसे / करके यह विचार खोटा ?
माँ के सम्मुख ही माँ का तुम / गौरव करते हो छोटा !" [33]

आज भी दूर-दराज के गाँवों में अछूतों को मंदिर प्रवेश की अनुमति नहीं है । मेरे गाँव कारेली ता. जंबुसर, जि. भरूच में भी हमारे गाँव के पुराने शिवजी के मंदिर में अछूतों को प्रवेश नहीं करने दिया जाता है और यदि कोई ऐसा करे तो उसका अपमान किया जाता है, क्योंकि क़ानून के डर से वे और कुछ तो कर नहीं सकते हैं । कई गाँवों में मंदिरों तथा अन्य सार्वजनिक स्थलों पर अछूतों के लिए सीमा रेखाएँ तय कर दी जाती हैं , जिससे आगे वे नहीं जा सकते । इस प्रकार आज भी यह समस्या कुछ परिवर्तन के साथ मौजुद है ।

2.2.2.3 दलितों द्वारा धर्मांतरण

धर्म, धर्मशास्त्रों, वेदों, स्मृतियों आदि के नाम पर हजारों सालों से दलित जातियों को भाँति-भाँति से सताया जा रहा है । समय के साथ उनका दमन एवं अत्याचार के नित नए हथकंडे अपनाए जा रहे हैं । इसलिए ज्यादातर दलित इन सबको अपनी नियति मान कर दिल मसोसकर कीड़े-मकोड़े की तरह जिंदगी बीता देते हैं और अत्याचारों एवं शोषण को सह लेते हैं, लेकिन कभी-कभार कुछ लोग इस अन्यायी व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त करने के लिए धर्मांतरण कर लेतें हैं । सदियों से बहिष्कृत एवं तिरस्कृत दलित स्पृश्यता एवं सहानुभूति की तलाश में भटकता रहा है । और इसी तलाश का प्रतिफलन है धर्मांतरण । किसी धर्म के दायरे में जब आदमी घूटन महसूस करने लगता है, तो वह किसी और धर्म की तरफ आकृष्ट होता है और धर्मांतरण कर लेता है । दलित तो सदियों से धर्म के नाम पर ही प्रताड़ित होता रहा

है और इस अमानवीय व्यवहार को वेद, पुराण या धर्मशास्त्रों एवं स्मृतियों का समर्थन प्राप्त होता है तो निश्चित रूप से उसे इस धर्म से छुटकारा पाने की तीव्र मंशा होती है और इस नर्क से भी बदतर जीवन एवं समाज से मुक्ति पाने के लिए धर्मांतरण ही उसको श्रेष्ठ विकल्प लगता है, जो स्वाभाविक है । दलितों की इस अवस्था एवं धूटन का लाभ उठाकर ही हमारे देश में आनेवाले मुसलमानों ने और बाद में ब्रिटीश काल में अंग्रेजों ने समाज के इस निम्न वर्ग का धर्मांतरण करवाके अपने धर्म में सम्मिलीत कर लिया । स् न 1910 में लन्दन टाइम्स में मद्रास के बिशप ने दावा किया था कि पिछले 40 वर्षों में, केवल तेलुगू प्रांत (हाल का तमिलनाडु प्रदेश) में लगभग दो लाख पचास हजार पंचम (तमिलनाडु की एक अछूत जाति) ईसाई बन गए हैं । त्रावणकोर में सात लाख ईसाई बने ।" [34] नारकीय जीवन से मुक्ति प्राप्त करने का दलितों का यह प्रयास भी सवर्ण सहन नहीं कर पाये और ऐसा घोषित कर दिया कि धन-दौलत और रोटी के टुकड़े की लालच में दलितों द्वारा धर्मांतरण का 'घोर पाप' किया गया । इस संबंध में मेरे निर्देशक डॉ. एन. एस. परमार ने लिखा है कि- "उनके इस धर्मांतरण के पीछे साहस्त्राधिक वर्षों से जो पिछड़ी जातियों का शोषण हो रहा है और उनके साथ जो अमानवीय व्यवहार हो रहा है, वह मूल कारण है । कई लोग ऐसा समझतें हैं कि- धन-दौलत की लालच में दलित लोग प्रायः ईसाई धर्म अंगीकार करतें हैं । परन्तु यह अर्ध सत्य है । कोई भी व्यक्ति रोटी के टुकड़े के लिए धर्म परिवर्तन नहीं करता है परन्तु उसको जब अपमानित किया जाता है, प्रताड़ित किया जाता है, उसके साथ जो अमानुषी व्यवहार होता है । उसे जानवरों से भी बदतर समझा जाता है, तब वहाँ उसकी आत्मा को चोट पहुँचती है और उसके कारण ही धर्म परिवर्तन की घटनाएँ घटित होती हैं ।" [35]

13 अक्टूबर, 1935 को नासिक जिले के येवोला में हुए दस हजार अछूतों के सम्मलेन में डॉ. आंबेडकर ने एलान किया कि- मैं आपको हिन्दू धर्म से नाता तोड़ने और कोई दूसरा धर्म अपनाने का सुझाव देता हूँ । लेकिन जब आप ऐसा करें तो नये

धर्म के चयन को लेकर सतर्कता बरतें और देखें कि वहाँ आपको व्यवहार, स्तर और अवसर की समानता बिना किसी शर्त के मिले ।" हम निश्चित तौर पर यह तो नहीं कह सकते हैं कि अन्य धर्मों में भी हिंदुओं जैसी ही वर्ण-व्यवस्था और छुआछूत है, लेकिन हिंदू समाज की इस वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव कहीं न कहीं तो जरुर दर्शन देता रहा है । हालांकि धर्म एक आत्मगत चीज है लेकिन इसके साथ इतनी वस्तुगत चीजें जुड़ी हुई है कि वे व्यापक सामाजिक,राजनैतिक जीवन को प्रभावित करती रही हैं । इन अर्थों में देखा जाए तो दलितों का धर्मांतरण सिर्फ आस्था का परिवर्तन नही है, वह हिंदू समाज से विरोध जताने का राजनैतिक हथियार भी है । इसलिए दलितों के द्वारा किये गए धर्मांतरण को केवल धार्मिक खेमेबंदी से ऊपर उठकर उनकी पीड़ा, खुशी और हानी-लाभ के दृष्टिकोण से देखना जरूरी है ।

मेरे गाँव में मेरे पिताजी के बचपन के समय में दलित बच्चों को स्कूल में सवर्णों के बच्चों के साथ बैठने नहीं दिया जाता था, तब बाद में अंग्रेज पादरी ने हमारे ही मोहल्ले में एक पाठशाला शुरू की और मेरे पिताजी सहित काफी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराई और उसी शिक्षा के आधार पर मेरे पिताजी को सरकारी नौकरी मिली और हमारे परिवार को दलितों के 'धर्म कार्य' सेवा करने से मुक्ति । मेरे पिताजी सहित कई अछूत बच्चों को पढाई उपलब्ध करवाके उनकी जिंदगी में सुख की सुनहरी किरण का आगमन करवाने में उस अंग्रेज पादरी का बहुत बड़ा योगदान रहा इसीलिए हमारे मुहल्ले के कई दलितों ने धर्म परिवर्तन करके ईसाई धर्म अंगीकार कर लिया । ऐसी स्थिति में यह धर्मांतरण अत्यंत उचित एवं स्वाभाविक जान पड़ता है ।[36]

आज मैं जहाँ शिक्षक के पद पर कार्यरत हूँ उसके आस-पास पूरा आदिवासी विस्तार है । मैं जी.आई.पी.सी.एल.कंपनी के स्कूल में कार्यरत हूँ इसिलिए कंपनी के टाउनशिप में हमें हर प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त है । लेकिन आस-पास नरोली, शाह, उमरपाड़ा आदि दूर-दराज के गाँवो में बस रहे आदिवासियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है । उन गरीब आदिवासियों के बच्चों को झंखवाव नामक गाँव में स्थित

आशादीप आश्रमशाला जो कि ईसाई ट्रस्ट के द्वारा संचालित है, में बिना किसी भी प्रकार की फीस लिए रहने और पढ़ने की सुविधा दी जाती है। जो मेरे मत से अत्यंत प्रशंसनीय कार्य है। [37] अगर इन सब बातों को ध्यान में रखकर देखा जाए तो दलितों के धर्मांतरण को केवल धन लिप्सा में किया गया 'जघन्य पाप' नहीं मान सकते।

क्या दलित हिंदू धर्म की गुफ़ा से निकलकर मुक्ति पा सके है ? क्या नए धर्म मैं उन्हें स्वतः ही बराबरी का अधिकार और सम्मान मिल गया है ? क्या सही में धर्म परिवर्तन से अछूतों की समस्याएँ कम हुई हैं ? क्या धर्मांतरण का सिध्धांत सिर्फ अपने धर्म के अनुयायियों की संख्या बढ़ाना नहीं है ? इन्ही प्रश्नों के उत्तरों को ध्यान में रखकर ही धर्मांतरण होना चाहिए, जो बाबा साहब का मानना था। धर्मांतरण या शुध्धिकरण की होड़ से सामाजिक तनाव बढ़ता है। लेकिन दूसरी ओर हिंदू समाज की असमानता के खिलाफ संघर्ष होना भी जरूरी है। इसलिए दलितों को चाहिए कि वे अपने राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों के लिए संघर्ष करें। समाज के हर व्यापक अभियान में बढ़कर हिस्सेदारी करें और नयी संस्कृति के निर्माण में योगदान दें। इन सबके बिना धर्मांतरण या शुद्धिकरण 'मुक्ति' नहीं 'मृग मरीचिका' ही सिध्ध होगा।

2.2.3 सामाजिक निर्योग्यताएँ

मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है अतः समाज से वह अत्यंत गहन एवं मजबूत रिश्ते से जुड़ा हुआ होता है। समाज में रहकर ही वह अपना जीवन व्यतित करता है। इस प्रकार मनुष्य एवं समाज एकदूसरे के पूरक हैं। मनुष्य से ही समाज बनता है और समाज ही मनुष्य नामक प्राणी को 'इन्सान' बनाए रखता है। इसलिए समाज के बिना मनुष्य की और मनुष्य के बिना समाज की परिकल्पना ही असंभव दिखाई देती है। इसके बिलकुल विपरीत हिन्दू धर्म शास्त्रों ने मानव समाज के एक बहुत बडे हिस्से को बाकी समाज से अलग करके उसे ब्रह्मा के पैंरों से उत्पन्न

बताकर उसका तिरस्कार किया एवं उनके सामाजिक संपर्कों पर रोक लगाने का कार्य किया । शूद्रों का तिरस्कार और उनका प्रताड़न धार्मिक आदेश माना गया । और इसीके चलते उन पर अनेक प्रकार की नियोग्यताएँ थोप दी गईं । जिनमें मुख्यतया निम्नलिखित प्रमुख हैं ।

2.2.3.1 सामाजिक संपर्क पर रोक

धर्मशास्त्रों एवं स्मृतियों के प्रभाव के कारण शूद्रों को समाज के निम्नतम स्तर पर रखा गया एवं उनसे हर प्रकार के संपर्क पर रोक लगाकर उनके संसर्ग को भ्रष्ट कर देनेवाला माना गया । उनका स्पर्श ही नहीं उनका दिख जाना, उनकी परछाई पड़ जाना या यहाँ तक की उनकी साँसों से दूषित हवा से भी अपवित्र हो जाने का डर बना रहता था । मनु ने इन्हे सवर्ण समाज से दूर करके इनके किसी भी प्रकार के संपर्क को भ्रष्ट बता दिया । आपस्तंब में चाण्डालों को देखने से मना किया है और कहता है कि इसका प्रायश्चित्त सूर्य और चन्द्रमा को देखकर करना होगा । वह चाण्डाल से बात करना भी पाप बताता है, जिसका प्रायश्चित किसी ब्राह्मण से बात करना हो । चांडालों के साथ नियमित व्यक्तिगत सम्पर्क तथा रोटी-बेटी व्यवहार पर प्रतिबन्ध कड़े थे । [38] बौधायन ने चाण्डाल जाति की स्त्री के साथ संभोग के लिए कुछ प्रायश्चित का विधान किया है । [39] तथा अन्य लोगों के इस आशय के मत को उद्धृत किया है जो ब्राह्मण अनजाने में चंडाल जाति की स्त्री के पास जाता है, चंडाल का दिया भोजन खाता है या उससे भेंट उपहार आदि स्वीकार करता है वह पतित (जाति बहिष्कृत) हो जाता है, लेकिन यदि वह जान-बूझकर ऐसा करता है तो वह चंडालवत ही हो जाता है । [40] कौटिल्य प्रथम विद्यायक हैं, जिससे स्पर्श के लिए दण्ड का विधान किया है और इस संदर्भ में चांडालों तथा अन्य अशुध्ध लोगों का निर्देश किया है । अर्थशास्त्र में विधान है कि यदि कोई चांडाल किसी आर्य स्त्री का स्पर्श कर ले तो वह एक सौ पण दंड का भागी होगा ।(चाण्डालस्थायीं स्पृशत:...शत्योदंड:) [41] मनुस्मृति में चंडाल के साथ किसी भी प्रकार के निकट संबंध की अनुमति नहीं है और

स्नातक को जो सामान्यतः ब्राह्मण होता था किसी चंडाल के साथ रहने की अनुमति नहीं है। [42] विज्ञानेश्वर के 'मिताक्षरा' में भी बृहस्पति को उद्धृत करते हुए बताया गया है कि पतित रजस्वला स्त्री, प्रसवा स्त्री तथा चंडाल को क्रमशःएक, दो, तीन और चार युगों की दूरी पर रखना चाहिए। एक युग चूँकि चार हाथ के बराबर होता है। इस तरह चंडाल को सवर्ण लोगों से सोलह हाथ की दूरी पर रखा जाता था। यह चंडाल के एक निश्चित दूरी से अधिक निकट आ जाने पर उसका अशौच लगने के विषय में संभवत: पहला स्पष्ट विधान है जो आगे चलकर इसी प्रकार के और भी अनेक विधानों का पथ प्रदर्शक हुआ। [43] शूद्रों और अंत्यजों को बाकी समाज से किसी भी प्रकार के संबंध रखने पर पाबंदी थी। द्विजों को अनेक धार्मिक विधानों द्वारा शूद्रों से दूर रहने के लिए कहा गया है। विवाह के विषय में मनुस्मृति में कहा गया है कि जो द्विज शूद्र कन्या से विवाह करते हैं वे तुरन्त अपने परिवार और बच्चों को पंक्तिय्युत होकर शूद्र बना देते हैं। [44] अत्रि का विचार है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र कन्या से विवाह करे तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाए। [45] शौनक का कहना है कि ऐसे विवाह संबंध से पुत्र उत्पन्न होने पर क्षत्रिय का भी यही हाल होना चाहिए और भृगु का कथन है कि यदि वैश्य को केवल शूद्र स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाए। [46] मनु ब्राह्मण द्वारा शूद्र महिला के समागम का घोर विरोध करते हैं। उनकी राय है कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त नरक में जाएगा। [47] और शूद्र से कोई भिन्न संतान नहीं रहने पर उसका परिवार शीध्र नष्ट हो जाएगा। [48] समाज के बाकी वर्गों से उनका कोई भी संपर्क अपराध माना गया। मनु का मानना है कि शूद्रों को चाहिए की वे विवाह में ऋण, उधार आदि का व्यवहार अपनी जाति के लोगों को छोड़कर दूसरों के साथ नहीं करें। मनु का आदेश है कि उच्च वर्णों के लोग इन्हे अपने हाथ से अत्र भी नहीं दे। [49] इन सब विधानों के आधार पर हम कह सकते हैं कि समाज का यह नीचला वर्ग समाज के बाकी वर्गों से अछूत ही रहा, वह एक अलग समाज में रहने को विवश हुआ क्योंकि इनको समाज की दूसरी जातियों से पृथक समझा जाता था इसलिए उनका निवास

भी गाँव या नगर से बाहर ही होता था । इस संबंध में डॉ. पनिक्कर लिखते हैं कि- जाति-व्यवस्था जब अपनी यौवनावस्था में क्रिया शील थी, उस समय इन अस्पृश्यों की स्थिति कई प्रकार से दासता से भी ख़राब थी । दास कम से कम एक स्वामी के अधीन होता था और इसलिए उसके अपने स्वामी के साथ व्यक्तिगत संबंध होते थे । लेकिन अस्पृश्य परिवारों पर तो गाँव भर की दासता का भार होता था । व्यक्तियों के दास रखने के बजाय, प्रत्येक गाँव के साथ कुछ अस्पृश्य परिवार एक किस्म की सामूहिक दासता के रूप में जुड़े हुए थे । उच्च जातियों का कोई भी व्यक्ति किसी भी अस्पृश्य के साथ व्यक्तिगत संबंध नंही रख सकता था । [50] अश्पृश्यों के सामाजिक संपर्क पर एक प्रकार की रोक लगा दी गई थी । वे सभा-सम्मेलनों, गोष्ठियों, पंचायतों, उत्सवों एवं सामाजिक समारोहों में भाग नहीं ले सकते थे । कई स्थानों पर तो उनकी छाया तक को अस्पृश्य माना जाता था ।उनको सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की अनुमति नहीं थी क्योंकि बहुत से सवर्ण हिन्दुओं को उनके दर्शन मात्र से अपवित्र होने की आशंका रहती थी । दक्षिण भारत में कई स्थानों पर तो उनको सड़कों पर चलने का अधिकार भी नहीं था । उनको छात्रावासों में रहने नहीं दिया जाता था । उच्च जाति के द्वारा जिन चीज-वस्तुओं का उपयोग होता था, उनका उपयोग वे नहीं कर सकते थे । अच्छे वस्त्र एवं सोने के आभूषण नहीं पहन सकते थे । ताँबा, पित्तल के बर्तनों का उपयोग नहीं कर सकते थे । धोबी उनके कपडे नहीं धोते थे, नाई उनके बाल नहीं बनाते थे और कहार उनका पानी नहीं भरते थे । एक पृथक समाज के रूप में उनको रहना पड़ता था । किसी एक व्यक्ति के स्थान पर समूचे गाँव या नगर की दासता का भार उन्हे ढोना पड़ता था । जघन्य प्रकार के कार्य करने के लिए उनको विवश किया जाता था । इन निर्योग्यताओं के कारण दलित जातियों में हमें कई प्रकार की सामाजिक समस्याएँ मिलती हैं ।

2.2.3.2 दलित दुर्गम निवास की लिए बाध्य

दलितों की दुर्दशा के लिए उनका अत्यंत दुर्गम निवास स्थान भी उतना ही कारणभूत माना जा सकता है । समाज के बाकी वर्णों से उनको दूर रखने के लिए

उन्हे गाँव या नगर से बाहर,स्मशान में रहने के लिए मजबूर किया गया। मनु ने दलित, शूद्रों के लिए अन्त्यावसायी या अंत्यज शब्द का प्रयोग किया है। अन्त्यावसायी का अर्थ है अन्त में रहनेवाला अर्थात् समाज के बाकी वर्गों से सभी से दूर रहनेवाला। ये निश्चय ही गाँवो या नगरों से बाहर रहते थे। मनु इनके विषय में कहते थे कि इन्हे नगर के बाहर चैत्य वृक्ष अथवा स्मशान के समीप अथवा पर्वतों और उपवनों में रहना चाहिए। उन्हे अपात्र कहा गया है अर्थात् उन्हे बर्तनों में भोजन नहीं दिया जाता था, क्योंकि वे बर्तन द्विजातियों के काम का नहीं रहता था।[51] अर्थ शास्त्र में कौटिल्य ने चांडालों के निवास स्थान के रूप में स्मशान भूमि की परिधि का निर्देश किया है।[52] उनका निवास स्थान स्मशान में बताया जाता है अतः याज्ञवल्कय ने इन्हे शव तथा कब्रिस्तान के समान अपवित्र माना है।[53] मनु के युग में ऐसे अस्पृश्य लोगों को न केवल गाँव-नगरों से निकाल दिया गया, अपितु उन्हे ऐसे कार्यों और कर्तव्यों से जोड़ा गया, जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि वे मनुष्य जाति के सबसे अधम नमूने हैं।[54] इस विषय पर डॉ. उपाध्याय आगे लिखते हैं कि जातक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि उस समय चांडालों की स्थिति समाज में बहुत निम्न थी और उन्हे गाँव के बाहर ही रखा जाता था। इनके साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध अपवित्र माना जाता था। ये नगर के बाहर अपनी निजी बस्ती बनाकर रहते थे। इनकी आजीविका शिकार करने, झाड़ू लगाने तथा शौच सफ़ाई से चलती थी।[55] धर्मशास्त्रों के इन्हीं सब विधानों के चलते उनको नगर से बाहर गंदी-बदबूदार जगहों पर निवास करना पड़ता था। जहाँ से गुजरना भी संभव न हो ऐसी गंदी-बदबूदार-दुर्गम जगहों पर रहकर अपनी दासतायुक्त जिंदगी बितानी पड़ती थी। अतः इनकी दुर्दशा के लिए उनके निवास स्थानों को भी एक कारण मान सकते हैं।

2.3 दलितों का अपमान

हिन्दू समाज में दलितों का जो स्थान है, उसे देखते हुए उनका अपमान होने की बात बहुत ही स्वाभाविक है। समाज की अन्य जातियों का कोई भी व्यक्ति बिना

कारण इनको अधिकार पूर्वक डाँट सकता है, उनका अपमान कर सकता है, क्योंकि धर्म शास्त्रों ने ही इन्हे ताड़न के अधिकारी बताया है ।अतः उनके पास जधन्य से जधन्य कार्य करवाना, इनका तिरस्कार करना, उनको पीटना , उनके साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार करना आदि बहुत ही आम बात मानी जा सकती है । सवर्णों के द्वारा दलितों का अपमान करना और इस अपमान के विष को विवश होकर पीना दलितों की नियति बना दी गई है । समाज का कोई भी व्यक्ति बिना मनमें किसी अपराध भाव के लाए उनका अधिकार पूर्वक अपमान कर सकता है । दलितों का अपमान, उनके साथ गाली-गलौज का व्यवहार, उनकी मार-पीट बहुत ही सामान्य घटनाएँ बन गई हैं । दलितों की इस अपमानीत अवस्था का कारण पुराने धर्म शास्त्रों में उनका निन्दनीय रूप में किया गया वर्णन ही है । धर्मशास्त्रों ने उन्हे अपवित्र, अशौच लगानेवाला और नरक-सफ़ाई जैसे कार्य से जुड़ा हुआ सिध्ध करके समाज के अन्य वर्गों में उनके प्रति तिरस्कार एवं घृणा पैदा करने में कोई कमी नहीं छोडी । फाहयान ने बताया कि चांडाल ही मद्य पीते थे और लहसून प्याज खाते थे । जिससे यह सूचित होता है कि वे खास तौरपर इन वस्तुओं के व्यसनी होते थे । [56] उनको स्वभाव से ही मांस भक्षी बताया गया है । एक बौध्ध ग्रन्थ में कहा गया है कि जो मांस खाता है वह पुनः चांडालों, पुक्कुस और डोम्बो के कुल में जन्म लेता है । [57] अछूतों और खासकर चाण्डालों का वर्णन बडे निन्दनीय रूप में किया गया है । कहा गया है कि अपवित्रता (अशुचि), असत्य, चोरी, नास्तिकता, निरर्थक कलह, काम, क्रोध और लोभ अन्त्यावसायियों के लक्षण हैं । [58] इन सब के कारण दलितों को अपमानित करने की घटिया मानसिकता समाज के लोगों के मस्तिष्क में घर कर गई है कि जिसे निकालना आज तक संभव नहीं हो पाया है । उनकी जाति का नाम ही अपमान सूचक शब्द बना दिया गया है । उनकी आपसी बातचीत और लोक-व्यवहार में आज भी कई ऐसे शब्द प्रयोग मिलते हैं जिससे उनकी इस घटिया मानसिकता का पर्दाफार्श होता है । मेरे निर्देशक डॉ. एन.एस.परमार ने दलितों के अपमान से

संबंधित कई कहावतों का संकलन किया है, जिसे मैं यहा उदधृत करना उचित समझूँगा।

'सामान्य बात चित तथा लोग व्यवहार में भी कई बार ऐसे शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिनसे इस वर्ग के प्रति समाज के मनोमस्तिष्क में अपमान का जो भाव है, वह प्रकट होता है। एक कहावत है- "कोरिन पत्रा बाँच ले तो पंडितन को कौन पूछेगा?" यह कहावत सामान्य तौर पर तब प्रयोग में लायी जाती है, जब कोई निम्न जाति का व्यक्ति किसी ऊँचे पद पर बिठा दिया जाता है। तब उसकी अयोग्यता को सिध्ध करने के लिए इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। ऐसे ही दूसरी कहावत है- "चमार की औलाद बनने चली फौलाद।" यहाँ तक की चित्त या मन की पतनोन्मुखी गति के लिए चमार चित्त कहा जाता है। गुजराती में यदि किसी घर में गंदगी का माहौल होता है तो कहा जाता है- "आ शुं ढेड़वाड़ो मांड्यो छे ? " अर्थात् यह क्या 'ढेड़वाला' जैसा बना रखा है। गुजराती में चमार के लिए 'ढेड़' शब्द का प्रयोग होता है। यद्यपि अब इस शब्द को असंसदीय और गाली सूचक माना जाता है और कानून में उसके लिए सजा की व्यवस्था भी है तथापि उसकी परवाह कौन करता है। क़ानून केवल क़ानून की पोथियों में ही रहता है।[59] गुजराती भाषा में आज भी 'ढेड़ा', 'भंगिया', वाघरी आदि शब्दों का प्रचलन गाली के रूप में ही किया जाता है। मैथिली भाषा में एक कहावत मिलती है- "चाम के चंडू चलल पहाड़, पिछलल हंगडी टूटल कपार।" (A man of leather-worker-class-went up a hill, he missed his footing and broken his head.) "[60] इस कहावत का अर्थ यह है कि छोटी जाति का व्यक्ति कोई बड़ा काम नहीं कर सकता है और यदि करने का प्रयास करता है तो उसकी बुरी गति होती है। ऐसी ही और एक कहावत है- "चार जाट गावे हरबोंग, अहीर, डफाली, धोबी, डोम।"इसमें भी उक्त जातियों के प्रति अपमान की तिक्तता ही नजर आती है। ऐसी ही लोकोक्ति मिलती है- "बेटी ने किया कुम्हार, अम्मा ने किया लुहार, न तुम चलाओ हमार न हम चलाएँ तुम्हार।"

(The daughter attached to a potter, and the mother to a black smith, you must not speak ill of me, nor I of me, nor I of you.") [61]

उसी प्रकार राजस्थानी भाषा में भी कहावतें मिलती है जैसे- "भग्गा भणण मिल गया, कुण जाणै कूँमार ?" अर्थात् नीची जाति का व्यक्ति भक्तों (साधुओं) में मिल गया, कौन जानता है कि कुम्हार है ? [62] गुजराती भाषा में एक कहावत मिलती है कि "ढेड़ी ना पग चार दिवस राता"- अभिप्राय यह है कि भंगिन के पैर चार दिन तक ही लाल रह सकते हैं क्योंकि पाँचवे दिन तो उसे मैला साफ़ करने जाना ही पड़ेगा । [63] इस प्रकार हम देखते है कि जन मानस में इन जातियों के लिए अति घृणास्पद भाव निहित हैं और इसका सबसे बडा कारण सैकडों वर्षों से उन पर थोपी गई निर्योग्यताएँ ही है ।

2.4 दलित प्रताड़न

ताड़न के अधिकारी इस वर्ग को प्रताड़ना या अत्याचार सहना पडे यह अत्यंत ही सामान्य बात मानी जानी चाहिए । क्योंकि बाकी वर्णों को उन्हे प्रताड़ित करने का 'धर्म सिध्ध' अधिकार जो मिल गया है । समाज में ये हमेशा निम्न स्थान पर रहे हैं अतः उन पर सब प्रकार के अत्याचार होते रहें हैं ।आज भी दूर-दराज के गाँवो में जाति-प्रथा इतनी मज़बूत है कि ऊँची जाति के लोग नीची जाति के लोगों पर चाहे जितने अत्याचार करें, कोई उनको पूछनेवाला नहीं हैं । ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा के आवरणों में छिपकर भी आजका समाज इन नीची जातियों के प्रति अपनी हीन मानसिकता को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पोषता रहा है, यह एक कड़वा सच है । आज भी लोगों के मन से शूद्रों के लिए तिरस्कार और घृणा की भावना नेस्तनाबूद नहीं हो पायी है । आज भी सदियों से प्रताड़ित और पीड़ित यह वर्ग देश की मुख्य धारा का सम्मानित सदस्य नहीं बन पाया है । 'नीच को धूरि समान' आज भी वेद वाक्य बना हुआ है । धूल का तो लोग स्पर्श भी करतें हैं लेकिन इस 'नीच' का तो स्पर्श तक वर्ज्य माना गया है । आज के दंभी समाज में भी दलितों का उत्पीड़न कम

नंही हुआ है इसके संबंध में मेरे निर्देशक श्री एन.एस.परमार. ने अपनी पुस्तक दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास में कई सबूत पेश किए हैं जिनका जिक्र मैं यहाँ उचित मानता हूँ । उनके गाँव मानपुरा ता.डभोई, जि.बडौदा (गुजरात) की एक घटना का वर्णन करते हुए लिखा कि - एक बार हमारे गाँव के मवेशियों में कोई बीमारी फैली, जिसके कारण ढोर फटाफट मरने लगे । गाँव के भुवा (ओझा) ने घुड़क कर कहा कि - हमारे गाँव के चमार ने कुछ तंत्र-मंत्र किया है, जिसके कारण गाँव के ढोर मर रहे हैं । तब गाँव के सभी लोगों ने मिलकर उस चमार की खूब जमकर पिटाई की थी वह मरणासन्न हो गया था । [64] दूसरी घटना है कि बड़ौदा की किसी सोसायटी में दस हजार रुपये की चोरी होने पर उसका दोष वहाँ काम करनेवाले आदिवासी युवक पर लगाया गया और बिना सबूत उसे ही चोर मानकर उसकी खूब पिटाई हुई । इतना ही नहीं अंधश्रद्धा से ग्रसित यह पढ़े-लिखे लोग उसे किसी पीर औलिया की मज़ार पर ले गये और उसके हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गई थीं । ऐसी मान्यता है कि व्यक्ति यदि निर्दोष हो तो बेड़ियाँ टूट जाती हैं । उस आदिवासी युवक की बेड़ियाँ नहीं टूटीं । अतः उसे इतना मारा गया कि मार खाते-खाते वह बेहोश हो गया था । [65] और एक घटना का वर्णन करते हुए डॉ. परमार लिखतें हैं कि - सन् 1980 के आस-पास अहमदाबाद के निकट जेतलपुर नामक गाँव में एक हरिजन युवक को जला दिया गया था, क्योंकि गाँव की एक सवर्ण लड़की से उसका प्रेम-व्यापार चल रहा था । यहाँ ध्यातव्य है कि सवर्ण जाति के लोग दलित जाति की स्त्रियों के साथ कैसा भी व्यवहार कर सकते हैं, वह उनका जन्मजात अधिकार है और भूले-भटके कोई हरिजन युवक यदि ऐसा करता है तो उसे मार दिया जाता है और उसकी दाद फ़रियाद नहीं होती है । [66] दलित समाज के उत्पीड़न एवं अत्याचार से संबंधित एक दलित युवा शिविर का आयोजन बडौदा में कीर्ति मंदिर में डॉ. जे. एस. बंदूकवाला के निर्देशन में दिनांक 5-1-1997 को हुआ था , जिसमें कुछ पत्रिकाएँ बाँटी गई थीं जिसमें 'गुजरात-मित्र', 'संदेश', 'गुजरात समाचार', 'लोकसत्ता' आदि समाचार-पत्रों से कुछ खबरें प्रकाशित की गई थीं, जिनमें कुछ निम्नलिखित है -

१. एक और स्त्री को निर्वस्त्र करके गाँव में घुमाया गया ।

२. एक हरिजन युवक को पेट्रोल डालकर जला दिया गया ।

३. अरेरा की सिवान में आदिवासी किशोरी पर पाशवी बलात्कार किया गया ।

४. धरा गाँव में छूरा भोंक कर दलित अध्यापक की हत्या की गई ।

५. कांकणोल गाँव के स्कूल में पानी पीने गए हरिजन बारातियों पर तीक्ष्ण हथियारों से हमला किया ।

६. तमिलनाडु में पुलिस और सवर्णों के त्रास से अस्सी हजार दलितों ने मुस्लिम-धर्म अंगीकृत कर लेने की धमकी दी है ।

आजाद भारत के 50वें प्रजासत्ताक दिन के उपलक्ष्य में हमारे तत्कालीन राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायण अपने राष्ट्र के नाम संदेश में देश में दलितों और स्त्रियों पर बढ़ रहे अत्याचारों पर चिंता व्यक्त कर रहे थे, उसी समय बिहार के जेहानाबाद जिले के शंकर बिगहा गाँव में जमींदारों की भाडूती 'रणवीर सेना' ने 21 दलितों की जघन्य हत्या कर दी थी । [67]

अभी फरवरी 2011 में 'संदेश' अख़बार में एक किसान के आत्मविलोपन की खबर छपी थी कि रापर (कच्छ) के जब्बरदान गढ़वी नामक किसान ने न्याय न मिलने पर मामलतदार ऑफिस के सामने ही खुद को जला दिया। उसी खबर के अंतिम परिच्छेद में लिखा गया था कि इससे पहले कच्छ के भचाऊ में एक दलित वृद्ध ने सरकारी महेसूल विभाग से न्याय न मिलने पर आमरण अनशन किया था और उसी में उसने प्राण खोये थे । [68] ध्यान देने योग्य बात यह थी उस वक्त उस दलित वृद्ध के आत्मविलोपन को इतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना जब्बरदान गढ़वी के आत्मविलोपन को । उसके लगातार दो-तीन दिनों तक इस आत्मविलोपन की खबर छपती रही लेकिन उस दलित वृद्ध की मौत का सिर्फ एक-दो पंक्तियों में ही जिक्र कर दिया गया । यही दलितों की उपेक्षित दशा का परिचायक है । दलित दमन के आज भी नए-नए अध्याय लिखे ही जा रहे हैं । दलितों की अवदशा का स्वीकार

करते हुए हमारी पूर्वलोकसभाध्यक्षा श्रीमती मीराकुमार ने कहा था कि- कालचक्र सब कुछ बदल देता है किन्तु कालचक्र ने जातिवाद को नहीं बदला । [69] जातिप्रथा का शिकार सदियों से दलित समाज हो रहा है और अब भी वह इससे निजात नहीं पा रहा है । जातिप्रथा से उत्पन्न भेदभाव, घृणा, और अत्याचार से दलित त्रस्त है । जिसके बहुत सारे सबूत मिलते हैं । राजस्थान के भीलवाड़ा जिले की तहसील आसीन्द के ग्राम तिलोली में 14 फरवरी 2009 को ग्यारह कुण्डीय मारुती नंदन महायज्ञ था । समस्त दलित जातियों ने इसमें भागीदारी चाही लेकिन उन्हें इस महायज्ञ में सम्मिलित नहीं किया । दलितों ने दलित अधिकार केन्द्र को सूचित किया और बात शासन तक पहुंची तो पुलिस ने दलितों के अधिकार दिलवाने के बजाए दलितों और आयोजकों के बीच एक लिखित समझौता करवा दिया कि हवनकुंडों में केवल ब्राह्मण पुरोहित ही बैठकर आहुति देंगे तथा क्षेत्र का कोई भी व्यक्ति आहूति देने के लिए सम्मिलित नहीं होगा । [70] 5, अगस्त, 2009 को उत्तराखण्ड की राजधानी दहेरादून के नजदीक प्रसिध्ध 'हनोल'मंदिर में एक दलित युवती की जमकर पिटाई की गई । युवती का दोष यह था कि मंदिर के नियमों के अनुसार यहाँ दलितों के लिए एक निश्चित सीमा रेखा तय की हुई है और यह युवती भीड़ अधिक होने की वजह से धक्का-मुक्की में निश्चित सीमा रेखा के आगे आ गई इससे पुजारी और उसके समर्थक नाराज हो गए, उन्होंने उसके कपड़े फाड़ दिए और उसकी पिटाई की तथा जातिसूचक शब्दों से प्रताड़ित किया । [71] कुछ वर्ष पूर्व हरियाणा में एक वाल्मीकि मजदूर को हूकुमसिंह नामक जमींदार ने ट्रेकटर से कुचलकर इसलिए मार डाला, क्योंकि वह बंधुआ मजदूरी की खिलाफ़त कर रहा था । [72] 31 अगस्त, 2005 में हरियाणा के गोहाना में जातीय पंचायत कर जाटों ने वाल्मिकी परिवारों के पचास घरों में आग लगा दी थी । झज्जर में 2002 में पांच दलितों को पीट-पीट कर बाद में जलाकर मार दिया गया । यह घटना तो पुलिस चौकी के सामने ही घटी परंतु उसे रोका न गया । इसिप्रकार हरियाणा के ही कथैल जिले में 10 फरवरी 2003 को उच्च जाति के लोगों ने 275 दलित परिवारों को पिट-पिट कर गाँव से बाहर खदेड़

दिया।[73] इन अत्याचारों से सिध्ध होता है कि दलितों के लिए बनाए गए सारे कानून, सारी धाराएँ किताबों में ही बंद रहती हैं। क्योंकि इसका अमल करनेवालों की मानसिकता ही जातिवाद से भ्रष्ट है। पुलिस और शासन-प्रशासन में बैठे वे लोग जिन पर क़ानून व्यवस्था बनाए रखने तथा निरपेक्ष भाव से अपने कर्तव्यों के तहत् न्यायपूर्ण कार्यवाही का दायित्व है, वे लोग जातीय वर्चस्ववादी नीति से ग्रसित होते हैं। इसिलिए दलितों पर अत्याचार करनेवालों को क़ानून का डर नहीं रहता। सवर्णों के हौंसले बुलंद इसीलिए रहते हैं कि पुलिस और प्रशासन में उन्ही के भाई बंधु रहते हैं तथा जातिवादी संस्कार उनमें अंदर तक समाए रहते हैं।

हमारे देश की गणना विश्व के बडे प्रजातांत्रिक राष्ट्र के रूप में होती है, लेकिन आघात पंहुचानेवाली बात तो यह है कि इसी देश में दलितों को वोट डालने से भी रोका जाता है। वर्ष 2009 में संपन्न लोकसभा चुनाव में राजस्थान के दौसा संसदीय क्षेत्र के कई बूथों पर दलितों को वोट डालने नहीं दिया। समाचार कवरेज के लिए गए दैनिक भास्कर के संवाददाता ने दलितों को इसकी शिकायत प्रशासन को करने को कहा तो दलितों ने दबी जबान से कहा कि प्रशासन की राह पर ही तो यह सब कुछ हो रहा है। किससे फरियाद करे ? [74] दलितों को सवर्ण समाज अपने साथ रखना नहीं चाहता। वे लोग दलितों की परछाई से भी दूर रहना चाहते हैं। तमिलनाडू में मदूरै जिले के उथापुरम् गाँव में दलित बस्ती से अलग करने के लिए सवर्णों ने दीवार खड़ी कर दी। बाद में प्रशासन ने इसे तोड़ दिया तो वे आंदोलित हो गए और अपने घरों को छोड़कर जंगलों में आदिवासियों की तरह रहने चले गए।[75] ऐसे ही कुछ और उदाहरण राम सहाय वर्मा ने दिये है- मध्य प्रदेश के मुरैना जिले में एक अजीब मिसाल कायम हुई है। कथित सवर्ण वर्ग के एक व्यक्ति ने अपने कुत्ते को दलित घोषित कर उसे घर से इसलिए निकाल दिया क्योंकि उस कुत्ते ने दलित के घर का कुछ खा-पी लिया था। दलितों के संपर्क से इन्सान को अशौच लगने के तो बहुत सारे उदाहरण मिलते हैं लेकिन एक पशु या जानवर भी भ्रष्ट हो जाता है ऐसा शायद पहली बार सुना। दूसरा उदाहरण है कि गोआ प्रदेश के तुयेम इलाके में एक

परिवार को गाँव और समाज से निकाल दिया गया है । उस परिवार ने गलती यह की थी कि परिवार का एक सदस्य किसी दलित व्यक्ति की शादी में शरीक हो गया था । उक्त परिवार को अब अपनी जान बचा कर एवं घर परिवार छोडकर दूसरी जगह भागना पड़ा है ।[76] उक्त विवेचन से यह सिध्ध होता है कि आज के समय में भी दलित प्रताड़न जारी है । स्वरूप, मात्रा में जरुर परिवर्तन आया है लेकिन दलित प्रताड़न निर्मूलन की बातें करना अतिशयोक्ति ही सिध्ध होगी ।

2.5 दलित स्त्रियों का यौन-शोषण

"यत्र नार्यस्तू पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।" के गाने गानेवाली भारतीय संस्कृति का इतिहास नारी प्रताड़न की अनेकों घटनाओं से भरा पड़ा है । भारतीय समाज में द्रौपदी और सीता से लेकर सानिया मिर्जा तक की महिलाओं को समाज की पाबंदियों और कुरूतियों का शिकार बनना पड़ा है । यदि कहेजाने वाले उच्च वर्गीय महिलाओं की यह दशा है तो बेबस निरीह दलित महिलाओं की दुर्दशा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । समाज के सबसे निम्न वर्ग की इन महिलाओं की अवदशा समाज की कूपमंडूकता की परिचायक है । दलित पुरुष वर्ग गाँव के उच्च वर्गीय लोगों के यहाँ काम करने जाया करते है । खेतों-खलिहानों में बेगार करने के लिए दलित महिलाएँ भी जाती है । जहाँ उनकी विवशता का लाभ उठाकर उनका खूब शारीरिक शोषण किया जाता है । इतना ही नहीं सत्ताधीश संपन्न वर्ग के जमींदार आदि लोग अधिकार पूर्वक दलित स्त्रियों का यौन शोषण करते हैं । यदि कोई दलित इसके खिलाफ़ आवाज उठाता है, तो उसे मारा जाता है, पीटा जाता है, दलित नारी प्रभुवर्ग के लिए भोग-विलास का साधन मात्र बनकर रह जाती है, और इस विलासिता को सामाजिक एवं धार्मिक स्वीकृति भी प्राप्त है, यह हमारे समाज की एक घिनौनी वास्तविकता है । यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो दलित नारी तो दलितों में भी दलित है । इस विषय में डॉ. रजत रानी 'मीनू' के विचार है कि "भारतीय समाज का कटु यथार्थ यह है कि यहाँ लड़के की अपेक्षा लड़कियों पर

नैतिक, शारीरिक व् मानसिक तौर पर वंश, जाति, कुल, परंपरा आदि की पाबंदियाँ अधिक लगाई जाती हैं और जहाँ वह अशिक्षित कूपमंडूक हो अथवा शिक्षित होकर भी उन्नत विवेक से रहित हों, या हो तो बंद दिमाग की स्त्री हो, तो उसकी दशा और भी सोचनीय हो जाती है, दलित नारी स्वतंत्र युग के अनुकूल समतावादी मानव मूल्यों से वंचित है । युगीन मूल्यों का विस्तार अभी तक ऊपरी दर्जे की महिलाओं तक सीमित है । ये अभिजात्य आसमान से नीचे नहीं उतरते । दलित स्त्री के हिस्से में आज भी त्रासदी है । समता नहीं होने के कारण दलित स्त्री, जातीय एवं पुरुषीय दोहरे आक्रमणों की शिकार है ।" [77] दलित महिलाएँ अपने स्त्री होने के कारण तो प्रताड़ित होती ही है लेकिन उसमें भी नीची जाती की होने के कारण उसका जीवन त्रासदियों का अंबार बना हुआ है । दलित वर्ग पर धन संपत्ति एकत्र करने की निर्योग्यता थोप दी गई है । इसलिए वह सक्षम होने पर भी धन-संपत्ति अर्जित नहीं कर पाता और जीवन भर आजीविका के लिए प्रभुवर्ग पर निर्भर बना रहता है और इसी निर्भरता का दुरुपयोग कर उच्च वर्गीय पुरुष दलित महिलाओं का यौन शोषण करते आये हैं । आश्चर्य की बात तो यह है कि शूद्र की परछाई से भी अपवित्र एवं भ्रष्ट होने वाला उच्च वर्गीय पुरुष दलित स्त्री के साथ शारीरिक संबंध बनाते समय अपवित्र और भ्रष्ट नहीं होता, बल्कि इसे वह अपना जन्मजात अधिकार समझता है । उच्चवर्ग के एहसानों के बोझ तले दबी हुई दलित महिलाएँ, मजबूरन इस प्रकार के शोषण को झेलती रहती है ।

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर कहा करते थे कि " मैं दलित समाज की प्रगति का मापन इस बात से करता हूँ कि दलित नारी ने कितनी प्रगति की है ।" [78] यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो आज गैर दलित वर्गीय नारी महानगरों में पढ़-लिखकर उच्च पदों पर सुशोभित हुई है, आज उसका अपना अस्तित्व भी है लेकिन वहीँ दूसरी तरफ़ दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों में दलित नारी आज भी दबी, पिछड़ी हुई और अनेकों प्रकार से शोषित हो रही है, जिनके उदाहरण हम आए दिनों अखबारों में पढ़ते रहते हैं । यह वास्तविकता है कि दलित नारी जो अपना पूरा जीवन

सफाई-सेवा में गँवा देती है, वह स्वयं अपना अस्तित्व नहीं बना पा रही है । आज का महानगरीय समाज अपने झूठे अभिजात्य की चकाचौंध में इस बर्बरता पूर्ण आचरण को अनदेखा करता है । मीडिया की चैनलों पर वातानुकूलित कमरों में बैठकर समाज की समस्याओं का विवेचन करनेवाले स्वघोषित बुद्धिजीवियों को ग्रामीण दलित महिलाओं की समस्याओं की दरकार नहीं हैं ।

दलित नारी की दयनीय दशा का एक अन्य स्वरुप है हिन्दू समाज की देवदासी प्रथा , इस प्रथा के तहत दलित स्त्रियों को जबरन देवदासी यानी भगवान की सेविका बनाकर मंदिरों एवं ठाकुरबारियों में रहने के लिए विवश किया जाता है, जहाँ वे मंदिर के पूजारी, महंत और 'भक्तों' की वासना पूर्ति का साधनमात्र बनकर रह जाती हैं । देवालयों में भगवान की मौजूदगी में ही महंत, पूजारी जैसे 'पूजनीय' लोग इन देवदासियों पर बलात्कार करते हैं और अपनी हवस का शिकार बनाते हैं । ठाकुरजी के दरबार में आनेवाले भक्तजन भी भगवान की इस 'प्रसादी' का उपभोग करते हैं । अत्यंत घृणास्पद बात तो यह है कि यह वासनापूर्ति का खेल धर्म के नाम पर और धर्मस्थानों पर खेला जाता है और द्रोपदी की चीर पूरनेवाला कन्हैया भी अपनी आँखों के सामने हो रहे इस वस्त्राहरण का मूक प्रेक्षक मात्र बनकर रह जाता है । भगवान के भक्तों की इस 'सेवा' को देवदासी का धर्मकार्य सिध्ध कर दिया गया है । इस दृष्टि से हिन्दू समाज में नारी उत्पीड़न की चरम व्यंजना धार्मिक स्वरुप में मौजुद है । "डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर अस्पृश्यों के पश्चात् हिन्दू नारी को भी सर्वाधिक उपेक्षित एवं अपमानित समझते थे । जिस प्रकार अस्पृश्यों और शूद्रों के लिए कर्तव्यों की कोई कमी नहीं थी और अधिकारों का दूर-दूर तक कोई नामोनिशान नहीं था उसी प्रकार हिन्दू नारी भी स्मृतिकारों और शास्त्रों के रचयिताओं की पुरुष समर्थक एक पक्षीय दृष्टि का शिकार हुई थी । इसलिए 'हिन्दू कोडबील' के आधार पर वह केवल भारतीय नारी विशेषकर हिन्दू नारी पर सदियों से चले आ रहे , दलितों और स्त्रियों के विरुद्ध पुरुष के एकाधिकार को समाप्त करना चाहते थे ।" [79] आज भी बलात्कार जैसी धृणित घटनाएँ प्रायः प्रतिदिन समाचार

पत्रों में पढ़ने को मिलती है जिनमें उम्र का लिहाज भी नहीं किया जाता । ये सब तो केवल ऐसी घटनाएँ ही होती हैं जो अखबार के माध्यम से प्रकाशित होती है, लेकिन दूर-दराज के गाँवों में ऐसी अनगिनत घटनाएँ घटती है जो प्रकाश में नहीं आती या नहीं लायी जाती । यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो दलित नारियों का शोषण आधुनिक समाज की कटु वास्तविकता ही बनी रहती है, जिसे स्वीकार करना ही होगा ।

2.6 शैक्षिक निर्योग्यताएँ

शिक्षा तो स्व-अर्जन की वस्तु है । इसलिए किन्हीं जातियों का शिक्षा अर्जन पर एकाधिकार होना ही हास्यास्पद एवं विसंगत प्रतीत होता है । लेकिन भारतीय समाज का यह कड़वा सच है कि निम्नजाति के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने के जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित कर दिया गया और उन्हें जबरन अशिक्षित रखकर अपनी सर्वोपरिता को बनाए रखने का हीन कृत्य किया गया । हिन्दू धर्म शास्त्रों में दलितों पर अन्य निर्योग्यताओं के साथ शैक्षिक निर्योग्यताएँ भी थोपी गई, जिनके कुछेक उदाहरण निम्नलिखीत हैं –

- "वेदांत दर्शन (1.3.34) सूत्र की व्याख्या करते हुए 'शंकर' लिखतें हैं कि शूद्र यदि वेद को सुन ले तो उसके कानों में पिछला हुआ शीशा और लाख भरवा देनी चाहिए, शूद्र स्मशानघाट की भांति है , अतः उसके निकट वेद नहीं पढ़ना चाहिए । शूद्र को उपदेश नहीं देना चाहिए ।
- गौतम धर्म सूत्र 2 , 34 के अनुसार यदि शूद्र वेदमंत्र का उच्चारण करे तो उसकी जिह्वा कटवा देनी चाहिए ।
- जिस राजा के राज्य में शूद्र न्यायाधीश होता है उस राजा का राज्य मुसीबत में फँसकर ऐसे दुःखी होता है जैसे कीचड़ में धँसी गाय ।
  (मनु. 8.21)

- ब्राह्मण चाहे अयोग्य ही हो, सिर्फ वही धर्म का प्रवकता अर्थात् न्यायाधीश बन सकता है । शूद्र चाहे योग्य ही क्यों न हो, न्यायाधीश बनने का अधिकारी नहीं । (मनु. 8.20)
- नीची जाति का व्यक्ति, लोभवश ऊँची जाति की आजीविका अपना ले तो राजा उसका सर्वस्व छीनकर उसे शीघ्र ही देश निकाला दे दे ।
  (मनु. 10.96)
- यज्ञ करते समय शूद्र से बात नहीं करनी चाहिए, न शूद्र की उपस्थिति में यज्ञ करना चाहिए । (शतपथ ब्राह्मण 3-1.1.10) [80]

इन निर्योग्यताओं को देखकर यही लगता है की दलितों को अशिक्षित रखने का एक षडयंत्र प्राचीनकाल से ही रचा गया था । शायद द्विजों को यह डर था कि शूद्र पढ़-लिखकर हमसे आगे निकल जाएँगे या फिर उनके अपने अल्पज्ञान का पर्दाफार्श होने का डर था । लेकिन मनु ने तो यह स्पष्ट ही कर दिया था कि मूर्ख से मूर्ख ब्राह्मण भी शूद्र से अधिक पूजनीय है, 'ज्ञाता' है । शिक्षा संबंधी ऐसी निर्योग्यताओं के कारण दलितों में शिक्षा का अभाव रहा जिसके कारण उनको अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा । प्राचीन काल से ही एक सोची-समझी योजना के तहत दलितों को शिक्षा से वंचित रखा गया । यदि कोई दलित किसी भी प्रकार से विद्या प्राप्त कर ले तो उसका क्या परिणाम होता था वह एक एकलव्य के उदाहरण से जान सकते हैं । शिक्षा-दीक्षा के हर मौके से उनको दूर रखा गया ।

१९वी-२०वी शताब्दी में नवजागरण कालीन आंदोलन के फल स्वरुप दलित बच्चों को पढ़ने का अधिकार तो प्राप्त हुआ लेकिन इसके लिए भी उनको बहुत सहना पड़ा, सामाजिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा, सवर्ण बच्चे अछूत बच्चों के साथ बैठने को तैयार नहीं थे। अतः उनके लिए अलग पाठशालाओं की व्यवस्था का आयोजन किया गया, लेकिन इन पाठशालाओं

में सवर्ण अध्यापक पढ़ाने के लिए तैयार नहीं थे अतः सर सयाजीराव गायकवाड़ जैसे राजवीओं ने दूसरे राज्यों से कुछ अहिन्दू अध्यापकों को निमंत्रित किया। इस प्रकार पढ़ाई का अधिकार प्राप्त होने के बाद भी शिक्षा को मूर्त स्वरुप बनाने के लिए संघर्ष जारी रहा।

जब शिक्षा प्राप्ति को रोकना संभव नहीं रहा तब उच्च वर्ण ने शिक्षित दलितों में एक प्रकार की स्वच्छता एवं उच्चता को प्रोत्साहन दिया, जिससे पढ़े-लिखे दलित अपने को अशिक्षित दलितों से ऊपर समझने लगे और इस प्रकार दलितों में भी एक प्रकार से वर्ग-भेद की उत्पत्ति हुई और संगठन शक्ति कमज़ोर हुई। परिणाम स्वरुप दलित प्रताड़न आसान ही बना रहा। देश की स्वतंत्रता के बाद गाँव के धनी लोगों ने अपने बच्चों को शहर के अच्छे स्कूलों में पढ़ने के लिए भेज दिया। सरकारी स्कूलों में 'विद्या सहायक' जैसे कम वेतनवाले अध्यापकों के पास पढ़नेवाले अधिकतर बच्चें इन नीची जातियों के ही रह गए। परिणाम स्वरुप दलित बच्चों के लिए अच्छी और गुणवत्ता युक्त शिक्षा आकाश-कुसुम ही बनी रही। इस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था के कारण दलित जाति के बहुत कम लोग ही शिक्षित हो पाए हैं। जो होनहार और अत्यंत मेघावी छात्र है उन्हें भी आज कोलेजों में 'आधुनिक द्रोणों' की कुटिलता का शिकार होना पड़ता है। अध्यापक, शिक्षक या गुरु जैसे उच्च एवं पूजनीय पद पर आसन्न होने के बावजूद यदि व्यक्ति जातिगत कुटिलता से मुक्त नहीं हो पाता है, तो वह वर्ण-भेद की कितनी गहरी पकड़ आज के समाज पर है , यह सिध्ध करता है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि दलित उन पर थोपी गई शैक्षिक निर्योग्यताओं का उल्लंघन करे यह आज भी समाज स्वीकार नहीं कर पाता है।

2.7 आर्थिक निर्योग्यताएँ

मनुष्य के जीवन में आर्थिक संपन्नता बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी अर्थ-सत्ता के सहारे वह जीवन की सभी समस्याओं का सामना करने में

समर्थ होता है। आर्थिक विपन्नता मानवी को विवशता, निर्भरता एवं दासता की गहरी खाई में धकेल देती है। किसी भी समाज की गतिविधियाँ उसकी अर्थ-सत्ता के द्वारा ही निश्चित एवं नियंत्रित होती रहती है। " सर्वे गुणाः कांञ्चनम् आश्रयन्ते " या "समरथ को नहिं दोष गुसाई" जैसी उक्तियाँ इसी वास्तविकता का प्रतिबिंबन करती है। दलित समाज की आर्थिक विपन्नता ही उनकी दयनीयता, लाचारी या निष्प्राणता का प्रमुख कारण है। उनकी दरिद्र अवस्था के पीछे हिन्दू समाज की वे तमाम धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएँ हैं जिसके तहत दलितों पर अनेकानेक प्रकार की निर्योग्यताओं को थोपा गया था। समाज के सबसे निम्न माने जाने वाले इस समुदाय को अर्थ-सत्ता से दूर रखने के लिए ब्रिटिशकाल के पूर्व दलितों पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए थे, जिससे वे दरिद्रता एवं विवशता से शापित बने रहे। दलितों पर थोपी गई कुछ आर्थिक निर्योग्यताएँ निम्नलिखित है -

- "शूद्रों को धन एकत्र करने की सुविधा नहीं होनी चाहिए। अन्यथा ब्राह्मणों को दुःख पहुँचता है। (मनु १०.१२९)
- ब्राह्मण विश्वासपूर्वक अपने शूद्र सेवक का धन ले सकता है, क्योंकि उसे जायदाद रखने का अधिकार नहीं है। (मनु ८.४.७)
- अगर क्षत्रिय भूखा मरने लगे तो वह ब्राह्मण का धन नहीं ले सकता, मगर एक दस्यु का धन ले सकता है। (मनु ११.१४)
- शूद्र के लिए ब्राह्मण की सेवा करना ही कल्याण करनेवाला धर्म है। इसके अतिरिक्त जो भी वह करता है निरर्थक है।(मनु १०.१२३ तथा ९.३३४)
- शूद्र को जूठा अन्न, पुराने वस्त्र और बिछौने देने चाहिए। (मनु १०.१२५) तथा (गौतम धर्म सूत्र १०.५.५९)" [८१]
- शूद्रों को अच्छे वस्त्र पहनने का और तांबा-पित्तल के बर्तन खरीदने का भी अधिकार नहीं था।

- उच्चवर्गों की सेवा के सिवाय वह कुछ भी और कार्य नहीं कर सकता था, जिसे वह धन एकत्र कर सके।
- गाँव के जमींदार लोग दलितों से बेगार करवाते हैं। बेगार अर्थात् बिना पारिश्रमिक की महेनत।

इस प्रकार समाज की व्यवस्था ही कुछ इस प्रकार की थी कि वे कभी दो पैसा कमा न सके और धन का संग्रह न कर सके। उनकी महेनत के बदले उनको झूठा खाना, पुराने वस्त्र, पुराने बर्तन आदि दिया जाता था। बेगार की समस्या आर्थिक समस्या है, इसका वर्णन करते हुए मेरे निर्देशक श्री एन.एस. परमार लिखते हैं कि –

"अपने वैयक्तिक तथा सार्वजनिक कामों में गाँव के बड़े लोग, चौधरी, जमींदार, महाजन आदि पिछड़ी जाति के लोगों से बेगार करवाते है। कई-कई दिनों तक बिना मजदूरी के महेनत करनी पड़ती है , यदि कोई बेगार करने से मना कर देता है , तो मार-मार कर उसकी खाल उधेड़ दी जाती है। दलित वर्ग इस बेगार के लिए मजबूर है क्योंकि , गरीब होने के कारण वे इस अन्याय का विरोध नहीं कर सकते है।"[82] धर्म से बहिष्कृत एवं समाज से तिरस्कृत दलित वर्ग की आर्थिक विपन्नता उसके जीवन को विवशता एवं बेबसी के आगार में डूबो देती है। आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण वह चाहकर भी अन्य निर्योग्यताओं से मुक्ति नहीं पा सकता है। वह मुक्ति स्वातंत्र्य एवं समानता के सपने संजोता हुआ अनेकानेक प्रकार के बंधनों में तड़पता रहता है, छटपटाता रहता है। उसका स्वाभिमान, उसका संघर्ष और उसके सपने आर्थिक दुर्बलता के कगार पर दम तोड़ देते हैं, और अपने पशुतुल्य जीवन को वह नियति मान लेने पर विवश हो जाता है। हिन्दू धर्म और समाज ने दलितों को अर्थोपार्जन के लिए सुयोग्य एवं सक्षम होने पर भी अयोग्य घोषित करके दलितों की दासता एवं अपने स्वामीत्व को सुरक्षित रखने का भयानक षडयंत्र रचा है। व्यक्ति यदि अपनी क्षमता के आधार पर संपन्नता प्राप्त करता है, तो उससे दूसरे व्यक्ति को क्यों समस्या होती है ? अपने जातिगत अभिमान एवं सर्वोपरिता बनाए रखने के

लिए एक पूरे समुदाय का धन कमाने पर प्रतिबंध लगा देना और इसके खिलाफ़ कोई खड़ा न हो इसलिए इन प्रतिबंधों को धार्मिक आदेश बना देना कहाँ तक उचित है ? इस निम्न स्तर की मानसिकता के दो ही कारण हो सकते है - या तो उच्चवर्ग को अपनी क्षमता एवं सामर्थ्य पर संदेह है, जिससे वह अपने को अर्थोपार्जन की प्रतियोगिता में बहुत पिछड़े मानते हैं , या दलितों को दलित ही रखकर उनके शोषण को निरंतर बनाए रखने की घिनौनी सोच है । इन दोनों दृष्टिकोण से तथाकथित उच्चवर्ग की नीचता का ही बोध होता है।

आधुनिक समय में भी शहरों की अपेक्षा गाँवों में खेतिहर मजदूरों का शोषण अधिक पाया जाता है । आज के प्रजातांत्रिक युग में भी ग्रामीण समाज में सामंती व्यवस्था ज्यादा मजबूत रही है । इस सामंती व्यवस्था में मजदूरों का आर्थिक, शारीरिक एवं सामाजिक शोषण होता रहा है। इसी शोषण और उपेक्षा के कारण ही रोजी-रोटी की तलाश में दलितों के समूह के समूह गाँवों से शहरों की ओर पलायन करते रहे हैं , लेकिन यथार्थ तो यह है कि आर्थिक विषमता के इस युग में कर्मठ दलित जीतोड़ मेहनत करने के बाद भी जीवित रहने की प्राथमिक जरूरतें रोटी-कपड़ा और मकान भी पूरी नहीं कर पाता है। भारत की बदकिस्मती यही है कि अभिजात्य वर्ग भी दलितों की दलित स्थिति को कायम रखने के 'यथासंभव' प्रयास में लगा हुआ है । समाज के एक पूरे समूदाय को पीछे धकेल कर वह प्रगति पथ पर अग्रसर होने का ख्वाब पाले हुए है । दलितों के दालित्य की नींव पर वह अपनी महानता के महल खड़ा करना चाहता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दलितों का दलन, उनकी उपेक्षा, उनका तिरस्कार एवं उनका पशुवत जीवन उनकी आर्थिक विपन्नता पर बहुत कुछ अंशों में निर्भर है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन उन्हें चाहकर भी मानवोचित सम्मान के संघर्ष से रोके हुए है। पिछड़ी जाति का बृहद समुदाय आज भी आर्थिक असंपन्नता से झूझ रहा है।

दलितों के दलन हेतु उन पर अनेको प्रकार की निर्योग्यताएँ थोप दी गई थीं। उपरोक्त निर्योग्यताएँ प्रमुख निर्योग्यताएँ है, इनके अलावा भी राजनैतिक, नैतिक , सांस्कृतिक आदि अनेक प्रकार की निर्योग्यताएँ दलित जीवन की करुण वास्तविकता बनी हुई हैं। यहाँ पर हमने कुछ प्रमुख निर्योग्यताओं का आकलन करने का विनम्र प्रयास किया है। यह कटु यथार्थ है कि इन निर्योग्यताओं के कारण दलितों के जीवन में भयानक उदासीनता छा गयी और उनकी संघर्ष चेतना भी खंडित हुई। समाज से पिछड़ने का प्रमुख कारण दलितों की यह अयोग्यताएँ ही रही हैं, जो किसी भी तार्किक दृष्टि से उचित नहीं है। अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु एवं अपने अहम् की पुष्टि हेतु समान प्रकार के प्राणियों को स्वतः प्राप्त सुविधाओं से भी वंचित कर देने का जघन्य कृत्य किसी भी दृष्टि से तर्कपूर्ण, उचित एवं क्षम्य नहीं माना जा सकता है।

❖ निष्कर्ष

1. हिन्दू धर्मशास्त्रों एवं तथाकथित धर्मपुरुषों ने मानवता को कलंकित कर दलितों के लिए अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं का सर्जन किया।
2. हिन्दू समाज ने धर्मशास्त्रों का मनगढ़ंत एवं स्वार्थी अंधानुकरण करके दलितों के जीवन को बर्बरतापूर्ण त्रासदी बना दिया।
3. धर्म घोषित निर्योग्यताओं की वजह से दलितों का जीवन दुःखों एवं यातनाओं से भर गया है।
4. धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि निर्योग्यताओं ने दलित समाज के उत्थान के सारे मार्ग बंद कर दिए।
5. इन निर्योग्यताओं के कारण दलितों की संघर्ष चेतना एवं प्रगति की चाह खंडित हो गई और अपने पशुवत् जीवन को वह अपनी नियति मान बैठा।
6. समाज के प्रभुवर्ग ने इन निर्योग्यताओं की आड़ में दलित समाज को कुचला, रौंदा और उनपर मनचाहे अत्याचार किए।

7. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी इन निर्योग्यताओं को हथकंडा बनाकर दलित समाज का शोषण जारी रहा है।
8. दलितों पर थोपी गई निर्योग्यताएँ आज भी दलित को 'दलित' होने का एहसास दिला रही हैं।
9. निर्योग्यताओं के बंधन में जकड़े दलित समाज ने देश की समानता एवं सदभावना की गुलबांगों पर प्रश्न चिह्न लगाया है।
10. भारत का ग्रामीण दलित आज भी निर्योग्यताओं के इस दोझख से मुक्ति पाने में असमर्थ प्रतीत हो रहा है।

☆ संदर्भसूची

1. ऋग्वेद : पुरुष सूक्त, 10/190, ऋषि नारायण
2. संस्कृति के चार आध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-74
3. मंगलदेव शास्त्री के हवाले से दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ : 74
4. भारतीय समाज में ब्राह्मण और शूद्र- संस्कृति और प्रति-संस्कृति का द्वन्द्व : भवदेव पाण्डेय 'कथा-क्रम' – नवेम्बर, 2000
5. 'उपेक्षित समुदायों का आत्म इतिहास' : संकलन एवं संपादन बढ़ी नारायण, विष्णु महापात्र, अनन्त राम मिश्रा, 'मेहतर जाति का इतिहास', एस.एल. सागर, पृष्ठ : 366-367
6. वही ; पृष्ठ : 370
7. वही ; पृष्ठ : 370-371
8. धर्म शास्त्र का इतिहास द्वितीय भाग ; पी.वी काणे ; पृष्ठ : 152
9. जातक III. काणे ; पृष्ठ : 233

10. प्राचीन भारत में सामाजिक संरचना : डॉ. एस.एन. उपाध्याय ; अध्याय 7 : सामाजिक संरचना में 'अंत्यज' ; पृष्ठ : 164
11. गौतम धर्म सूत्र XIV ; पृष्ठ : 30
12. अर्थशास्त्र II ; पृष्ठ : 18
13. मनुस्मृति X : पृष्ठ : 33-34
14. विशिष्ट धर्म सूत्र, प्रस्तावना एक ; पृष्ठ : 5
15. प्राचीन भारत में सामाजिक संरचना : डॉ. एस. एन. उपाध्याय ; अध्याय 7 ; समाजिक संरचना में 'अंत्यज' ; पृष्ठ : 177
16. दलितों की दुर्दशा : कारण और निवारण; गामाराम ; पृष्ठ 14
17. भारत का संस्कृतिक इतिहास ; हरिदत्त वेदालंकार, पृष्ठ 277
18. भारतीय समाज तथा संस्कृति ; डॉ. एम.एल. गुप्ता तथा डॉ. डी.डी.शर्मा ; पृष्ठ 138
19. उद्धरण कोष ; डॉ. भोलानाथ तिवारी ; पृष्ठ 272
20. वही ; पृष्ठ : 272
21. वही ; पृष्ठ : 274
22. वही ; पृष्ठ : 274
23. Thus spoke Vivekanand : Pg – 24
24. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास : डॉ. एन.एस. परमार ; चिन्तन प्रकाशन कानपुर , २०१० , अध्याय 6 : दलित जीवन की समस्याएँ II ; पृष्ठ 225
25. वही ; पृष्ठ : 225
26. जाति-व्यवस्था ; नर्मदेश्वर प्रसाद ; पृष्ठ 29
27. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानंद सरस्वती ; पृष्ठ 73
28. वही ; पृष्ठ : 61

29. राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी; 4, 5 Dec 2009 ; 'हिन्दी साहित्य और युगबोध एवं सामाजिक समस्याएँ।' ; प्रो. राजेन्द्र मिश्र (विशेष अतिथि); स्थल म.स.युनि. बड़ौदा
30. मनु की समाज व्यवस्था : सत्यमित्र दुबे ; पृष्ठ 48
31. एतरेय ब्राह्मण : 5/12
32. 'एक फूल की चाह' : सियाराम शरण गुप्त ; NCERT कक्षा 9 हिन्दी ब की पाठ्य पुस्तक स्पर्श भाग १
33. वही
34. प्रेमचन्द और अछूत समस्या : डॉ. कान्ति मोहन ; पृष्ठ 57
35. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास ; डॉ. एन.एस.परमार ; चिन्तन प्रकाशन कानपुर , २०१०, पृष्ठ 233
36. गाँव : कारेली ; तालुका-जंबुसर , जिला-भरुच (गुजरात)
37. आशादीप ; झंखवाव, तालुका-मांगरोल, जिला-सुरत (गुजरात)
38. आपस्तंब धर्मसूत्र II, 3, 9, 25
39. बौधायन धर्मसूत्र I, 8, 16, 12
40. वही ; II, 18
41. अर्थशास्त्र, II, 18
42. मनुस्मृति, X, 37
43. विवेकानंद झा चंडाल और अस्पृश्यता का उद्भव ; पृष्ठ 30-31
44. मनुस्मृति, III, 15
45. मनुस्मृति की टीका, III, 15
46. मनुस्मृति की टीका, III, 16 (कुल्लूक की टीका सहित)
47. मनुस्मृति की टीका, III, 17
48. मनुस्मृति की टीका, III, 64

49. मनुस्मृति, X, 53-54 कुल्लूक का कथन है कि यह नौकरों के माध्यम से करना चाहिए ।

50. हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर ; डॉ. के.एस.पनिक्कर ; पृष्ठ 27

51. धर्मशास्त्र का इतिहास : भाग 2 ; पी.वी.काणे ; पृष्ठ 152

52. अर्थशास्त्र : V, 6

53. प्राचीन भारत में अस्पृश्य एवं अस्पृश्य जातियाँ, संघमित्रा : पृष्ठ 16-17

54. प्राचीन भारत में सामाजिक संरचना ; डॉ. एस.एन. उपाध्याय ; पृष्ठ 177

55. वही ; पृष्ठ 178

56. तुलनीय मृगच्छकटिक ; X

57. लंकावतार सूत्र ; पृष्ठ 258

58. भागवत पुराण, XI, 11, 30

59. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास : डॉ. एन.एस. परमार ; चिन्तन प्रकाशन कानपुर , 2010, पृष्ठ 190

60. भारतीय कहावत कोष : सं. विश्वनाथ दिनकर नरवडे ; पृष्ठ 648

61. वही ; पृष्ठ 673

62. वही ; पृष्ठ 676

63. वही ; पृष्ठ 206

64. गाँव - मानपुरा, तहसील-डभोई, जिला-बड़ौदा, गुजरात

65. संदेश – गुजराती दैनिक पत्र – 10 मार्च 2000

66. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास ; डॉ. एन.एस. परमार, चिन्तन प्रकाशन कानपुर , 2010, पृष्ठ 192

67. दैनिक –गुजरात समाचार ; दि. 02/02/1999 ; पृष्ठ 6

68. दैनिक – संदेश ; सुरत आवृत्ति ; दि. 22/02/2011 ; पृष्ठ 1 , 11

69. पंजाब केसरी - दि. 11/08/2000

70. नागसेन (साप्ताहिक):दि.28/03/2009:12 विदर्भ कोलोनी, चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)

71. महका भारत : दि. 06/08/2009 - जयपुर तथा जनसत्ता दि. 08/082009 - दिल्ली

72. दलित दमन की दास्तां, लेखक – चंद्रिका, डेलीन्यूज़ 07/08/2009, जयपुर

73. आश्वस्त – जनवरी – 2010 ; पृष्ठ 2-3

74. दैनिक भास्कर, 8 मई 2009 ; पृष्ठ 7 , जयपुर

75. पंजाब केसरी, 11/08/2009, दिल्ली

76. आश्वस्त – फरवरी – 2011 ; पृष्ठ 20-21

77. हिन्दी दलित कविता,डॉ.रजतरानी'मीनू',नवभारत प्रकाशन,दिल्ली, 2009 , पृष्ठ 79

78. हिन्दी दलित कविता, डॉ. रजतरानी 'मीनू', नवभारत प्रकाशन , दिल्ली , 2009 , पृष्ठ 78

79. युग पुरुष बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, हिमांशुराय, पृष्ठ 203

80. हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , पृष्ठ 32, 33, 34

81. वही ; पृष्ठ 33

82. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास ; डॉ. एन.एस. परमार ; चिन्तन प्रकाशन कानपुर , 2010, पृष्ठ 219